

शोलह विजेता

जितेन्द्र जैन
बाबूलाल नागा

सफल राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों की सच्ची कहानियां

शोलह विजेता

जितेन्द्र जैन
बाबूलाल नागा

सफल राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों की सच्ची कहानियां

सोलह विजेता

| | |
|---------------|----------------------------------|
| आलेखन | : जितेन्द्र जैन, बाबूलाल नागा |
| संपादन | : पूर्वा कुशवाहा, ममता जैतली |
| मार्गदर्शन | : राजीव खण्डेलवाल, भारती जोशी |
| सहयोग राशि | : 100 रुपए मात्र |
| वित्तीय सहयोग | : ???? |
| मुद्रक | : यूनिक प्रिन्टिंग प्रेस, उदयपुर |
| वर्ष | : दिसम्बर 2007 |

स्वत्वाधिकार : © आजीविका ब्यूरो ट्रस्ट

प्रकाशक की लिखित स्वीकृति के बिना इस पुस्तक का कोई भी भाग पुनर्मुद्रित नहीं किया जा सकता। न ही किसी भी रूप में किसी भी साधन से, इलेक्ट्रॉनिक या मेकेनिकल या फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या कैंसी भी सूचना भंडारण या पुनर्प्राप्ति व्यवस्था द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रकाशन व प्रस्तुति

आजीविका ब्यूरो ट्रस्ट

38, मंगलम कॉम्प्लैक्स, साइफन कॉलोनी,
बेदला रोड, उदयपुर

दूरभाष : 0294-2454092, फ़ैक्स : 0294-2454429

ई-मेल : aajbureau@sancharnet.in

अनुक्रम

प्राक्कथन

आमुख

सफल राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों की सच्ची कहानिया

1. कभी मिस्त्री तो कभी ठेकेदार
2. अब धंधा, मंदा नहीं
3. पैसा ही सब कुछ नहीं
4. सीखने की लगन ने पहुंचाया इस मुकाम पर
5. बड़ा भाई न लाता तो...
6. पटरी से पलटी जीवन की गाड़ी
7. दौड़ रही है गाड़ी
8. सही समय पर सही फैसला
9. एक दूजे का साथ
10. मिल कर खींचते रहे जीवन की गाड़ी
11. विदेश जाने वाला पहला गमेती
12. ललक लगातार सीखने की
13. लहरी हमारा गुरु है
14. मजदूरी नहीं करेंगे हमारे बच्चे
15. सुथारी के काम में बहुत पैसा है
16. जोधपुर नहीं जाता तो

सारांश

प्राक्कथन

दक्षिणी राजस्थान के हजारों श्रमिक रोजगार की तलाश में गुजरात, महाराष्ट्र एवं अन्य प्रांतों के शहरों व उद्योगों में मजदूरी हेतु प्रवास करते हैं। वहां इन्हें निर्माण कार्य, ढाबों, कारखानों, होटलों व खेतों में जो काम मिलता है, वह प्रायः हाड़तोड़ मेहनत व निचले दर्जे का होता है। आजीविका का यह स्रोत अल्पकालिक व अस्थायी तो होता ही है, साथ ही मजदूरी भी बहुत कम ही मिल पाती है। इसके अलावा इन प्रवासी श्रमिकों को कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।

आजीविका ब्यूरो दक्षिणी राजस्थान के ग्रामीण व आदिवासी इलाकों से रोजगार के लिए शहरों में जाने वाले हजारों अकुशल मजदूरों की आजीविका की बेहतरी के लिए कार्यरत है।

ब्यूरो का लक्ष्य “आजीविका संसाधनों से कमजोर, अस्थायी एवं अकुशल प्रवासी मजदूरों के लिए रोजगार अवसरों को बढ़ाने एवं कार्य परिस्थितियों को सुधारने में मदद करना है”। हमारा मानना है कि :-

- संसाधनों से कमजोर ग्रामीण परिवारों के लिए उनका श्रम ही उनकी मुख्य संपत्ति है।
- गरीबी से जूझ रहे ग्रामीण परिवारों को अपने जीवनयापन की जरूरतों के लिए गांव से बाहर जाकर मजदूरी करना आज की हकीकत है। इस प्रवृत्ति का प्रमुख कारण है स्थानीय रोजगार के घटते अवसर।
- वर्तमान में बाहर जा रहे प्रवासी श्रमिकों की संख्या इतनी अधिक है कि अब इसे रोकना, इस धारा को बदलना संभव नहीं है।
- प्रवास को गरीब श्रमिकों के हित में अधिक लाभकारी, सुरक्षित एवं गरिमापूर्ण बनाया जा सकता है व बनाया जाना चाहिए।
- शहरी विकास व शहरों में बढ़ रही आर्थिक गतिविधियों में प्रवासी श्रमिकों का महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसे में इन्हें उपेक्षा नहीं बल्कि मूलभूत सेवाओं व सहयोग की आवश्यकता है जिससे कि ये अपने प्रवास को अधिक टिकाऊ व लाभकारी बना सकें।

पलायन कर रहे इन मजदूरों को आर्थिक अवसर उपलब्ध कराने व उनकी सामाजिक

(i)

सुरक्षा को मजबूती देने के लिए आजीविका ब्यूरो द्वारा प्रवासी श्रमिकों को निम्न सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं :-

- नए रोजगार संबंधी दक्षता व हुनर में प्रशिक्षण देना व प्रशिक्षणों से जोड़नाय रोजगार के अवसरों की सूचना रखना तथा बेरोजगार श्रमिकों व युवाओं को रोजगार से जोड़ने में मदद करनाय
- रोजगार के लिए गांव से बाहर जा रहे श्रमिकों का पंजीयन करनाय प्रवासी श्रमिकों की पहचान व परिचय के लिए फोटो परिचय-पत्र बनानाय श्रमिक व उसके परिवार के बीच संपर्क बनाए रखने में मदद करनाय
- प्रवासी श्रमिकों को रोजगार स्थलों पर टिके रहने व बेहतर आमदनी के लिए मार्गदर्शन व सहयोग प्रदान करनाय साथ ही, गंतव्य स्थल पर अल्पावास गृह, वित्तीय, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाएं उपलब्ध करानाय तथा
- श्रमिकों को कानूनी जानकारी व परामर्श देना तथा आवश्यकता पड़ने पर कानूनी मदद करना।

आजीविका ब्यूरो को कार्य करते हुए तीन वर्ष की अवधि पूर्ण हो रही है। ब्यूरो मुख्यतः दो जिलों की चार तहसीलों में श्रमिक सहायता व संदर्भ केन्द्र का संचालन करता है। साथ ही, गुजरात में राजस्थानी श्रमिकों की सहायता हेतु दो केन्द्रों का संचालन भी किया जा रहा है। आजीविका ब्यूरो सार्वजनिक प्रन्यास अधिनियम 1959 के तहत ट्रस्ट के रूप में पंजीकृत है।

ब्यूरो का सदा यह प्रयास रहा है कि प्रवासी श्रमिकों की जरूरतों एवं स्थितियों को नजदीकी से देखा व समझा जाए। ताकि हम गहराई से यह समझ सकें कि हमारी कहां आवश्यकता है एवं श्रमिकों को किस तरह की सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं। इस हेतु ब्यूरो द्वारा समय-समय पर समूह आधारित, व्यवसाय आधारित एवं पलायन के विविध आयामों पर शोध व अध्ययन किए जाते रहे हैं।

इसी क्रम में एक विचार यह आया कि क्यों ना ऐसे प्रवासी श्रमिकों का अध्ययन किया जाए जिन्होंने अपने काम की शुरुआत बिल्कुल निचले दर्जे के काम से की हो और आज वे किसी ऐसे मुकाम पर पहुंचे हैं जो सामान्य प्रवासी श्रमिकों से हटकर है।

हमारी नजर में सफलता का मापदंड यह था कि व्यक्ति ने अपने काम में कितनी उन्नति कीय उसने प्रवास आधारित आजीविका से अपने रहन-सहन, पारिवारिक जिम्मेदारियों का तालमेल किस प्रकार बिठायाय एवं उसने क्या आर्थिक लक्ष्य हासिल किए।

इस अध्ययन हेतु करीबन 15-16 सफल राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों की जीवनियां लिखना तय किया गयाय इसके पीछे मुख्य उद्देश्य निम्न बिन्दुओं की समझ बनाना था :-

(ii)

- सफल प्रवास हेतु सही व्यवसाय के चयन का महत्व
- व्यावसायिक सुरक्षा, स्थायित्व एवं सफलता के सहयोगी कारक
- व्यवसायिक बाधाओं व उससे निपटने की रणनीतियां
- किस तरह की सेवाएं एवं सम्पर्क प्रवासी श्रमिकों की आजीविका मजबूती में मदद करती हैं ? व
- प्रवासी परिवार की आजीविका व इस आजीविका का उसके पारिवारिक विकास पर प्रभाव ।

उपरोक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए ही ब्यूरो ने राजस्थानी सफल प्रवासी श्रमिकों की जीवनियां लिखने का बीड़ा उठाया जिसे हमारी लेखक मंडली ने पूरी ईमानदारी से निभाया है। इस पुस्तक में उल्लेखित 16 सफल प्रवासी श्रमिकों की जीवनियों से मिली समझ आजीविका ब्यूरो के उपयोगी ज्ञानवर्धन में तो सहायक होगी ही, साथ ही इन जीवनियों को पढ़ने वाले अन्य प्रवासी श्रमिक बन्धु भी इनसे कुछ सीख व प्रोत्साहन पाएंगे, ऐसी ब्यूरो की आशा है।

-आजीविका ब्यूरो

आमुख

**“कदम चूम लेती है खुद आकर मंजिल
मुसाफिर अगर हिम्मत ना हारे”**

जब हम किसी सफल प्रवासी से बातचीत करते तो हमें ये पंक्तियां बार-बार याद आती थीं। अपने मुकाम तक पहुंचने के लिए क्या-क्या संघर्ष नहीं करने पड़े इन प्रवासी श्रमिकों को। बड़े ही दिलचस्प व रुचिकर अनुभव हुए इस दस्तावेजीकरण में। मूसलाधार बारिश और उसमें भीगते हुए हम। ऊपर से संकरे पहाड़ी रास्तों में भरे पानी में फिसलने का डर। रास्ते में पड़ने वाली नदी में पानी की आवक ज्यादा हो तो श्रमिक के घर पहुंचना ही मुश्किल था। लेकिन इन हालातों के बावजूद हमें प्रवासी श्रमिकों के घर पहुंचना था क्योंकि हम निकले थे सफल प्रवासियों की खोज में।

इस अध्ययन के दौरान हमें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रवासी श्रमिकों से मिलने से पहले हमें लगता कि न जाने वे अपने बारे में बता पाएंगे कि नहीं। बातचीत शुरू करते ही श्रमिक में एक डर, एक झिझक का अहसास होता। यही डर का अंदेशा कभी-कभार बातचीत में बाधा भी पहुंचाता। इसीलिए हमने प्रवासी श्रमिकों से बातचीत करने, उनसे सूचनाएं लेने का कोई तयशुदा तरीका नहीं अपनाया। सहज और अनौपचारिक बातचीत से ही यह संभव था कि प्रवासी श्रमिक हमसे खुलकर चर्चा करें और उन दुखों तकलीफों का भी बयान करें जिनको उसने अपने प्रवास के दौरान सहा।

उदयपुर जिले के गोगुन्दा, कोटड़ा तथा राजसमन्द जिले के कुम्भलगढ़ व रेलमगरा क्षेत्रों में इन श्रमिकों से संपर्क किया गया। वहीं गुजरात के अहमदाबाद एवं खेड़ब्रह्मा गंतव्य स्थलों पर भी हम प्रवासी श्रमिकों से जाकर मिले पर साक्षात्कारों के पहले ही ब्यूरो के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की मदद से श्रमिकों का चयन कर लिया गया था। किसी श्रमिक से शुरुआती बातचीत के दौरान ही अंदाजा हो जाता था कि उसने अपने प्रवास का अनुभव अपने जीवन में कितना उपयोग में लिया। सहसा ही हमारे जहन में यह सवाल कौधता कि क्या यह सफल प्रवासी है ? बातचीत के दौरान जब हमारे इस सवाल का सकारात्मक जबाव मिलता नजर आता तो हम अपनी बातचीत के क्रम को आगे बढ़ा देते।

शुरुआत में बातचीत के लिए श्रमिक से समय लिया जाता। उनके द्वारा दिए समय

के मुताबिक ही हम तय किए स्थान पर पहुंच जाते। यही कारण था कि गंतव्य स्थलों पर श्रमिकों से हमारी मुलाकात रात्रि के समय ही हो पाती। वहीं, गांव में किसी से मुलाकात करने अल्लसुबह ही पहुंचना पड़ता। ऐसा भी नहीं रहा कि तयशुदा समय पर श्रमिक हमें हमेशा मिल ही गया हो। सफल प्रवासी की खोज में हमें मीलों जाना पड़ता और जब श्रमिक नहीं मिलता तो निराश लौटना भी पड़ता। लेकिन हमने धैर्य बनाए रखा और तब तक नहीं रुके जब तक हमारा उसी श्रमिक से सम्पर्क नहीं सधा।

श्रमिकों से गांव में उनके घर पर जाकर मिलने तथा गंतव्य स्थल पर जाकर मिलने में काफी अलग-अलग अनुभव हुए। जहां एक तरफ गांव में श्रमिक को विश्वास में लेने के बाद सहज रूप में बातचीत करना संभव हुआ, वहीं दूसरी तरफ, गंतव्य स्थलों पर मिले श्रमिक बातचीत में अंत तक संकोची बने रहते। इसी तरह, जहां गांव में मिले श्रमिक अपनी फोटो खिंचवाने या देने के लिए तत्पर दिखाई दिए वहीं गंतव्य स्थलों पर हम कैमरा बाहर निकालने तक की हिम्मत नहीं जुटा पाते। श्रमिक हमसे अपरिचित था और हमें डर यह था कि कहीं कैमरा देखकर वह हमसे बातचीत करना बंद ना कर दे। हमारे लिए यही महत्वपूर्ण था कि गंतव्य पर एक अनजान, बड़े शहर में एक प्रवासी श्रमिक हमसे बातचीत तो कर रहा था।

सफल प्रवासी अध्ययन के लिए हमने सीधे परिवार में जाकर श्रमिकों से संपर्क किया। प्रवासियों की स्थिति एवं प्रभाव का अंदाजा लगाने हेतु गांवों में समूह चर्चा भी की गई। उनके मित्रों परिजनों से चर्चा कर उनकी आत्मकथाओं की पुष्टि की गई, उनके बारे में राय जानने की चेष्टा की गई। इस कितबिया के आगामी पृष्ठ इसी ईमानदार कोशिश को आप तक पहुंचाते हैं। हमें उम्मीद है कि ये जीवन-वृत्त आपको भी प्रेरणादाई लगेंगे।

-जितेन्द्र जैन और बाबूलाल नागा

कभी मिस्त्री तो कभी ठेकेदार

राजसमन्द जिले की कुम्भलगढ़ तहसील की एक पंचायत है मझोरा पंचायत। उसमें स्थित खारचा भागल में रहता है 26 वर्षीय परताराम गमेती। परताराम ने बारह साल की उम्र में मुम्बई जाकर साफ-सफाई व झाड़ू-पोंछे का काम प्रारंभ किया था। आज वही परताराम चिनाई कार्य में न केवल ठेकेदार हो गया है, बल्कि मझोरा में सफल प्रवासी के रूप में एक जाना-पहचाना नाम भी हो गया है।

मझोरा गांव केलवाड़ा से महज चार किलोमीटर दूरी पर स्थित है। इस गांव में पहुंचते ही परताराम के बारे में कुछ लोगों से पूछा गया तो एक आवाज आई 'परत्यों ठेकेदार'। गांव के लोग परताराम को इसी नाम से जानते हैं। परत्यों ठेकेदार के घर पहुंचने के लिए आपको कठिनाई से भरे रास्तों पड़ेगा। मझोरा पंचायत लगभग तीन किलोमीटर भागल, जहां परताराम घर पहुंचने के लिए उपयोग की बजाय मुनासिब लगता है, जाने वाले रास्ते में पहाड़ियां व गहरी खाइयां हैं। अतः हमने भी पैदल जाने की ठानी। ऊंची-नीची पहाड़ियों को पार कर हम परताराम के घर पहुंचे। घर पहुंचते ही आस-पड़ोस के घरों से बच्चे व बड़े निकलकर परताराम के घर आकर बैठ गए। शायद उन्हें भी उत्सुकता हुई कि हम बाहर से आए लोग भला कौन हैं? परिचय देने के साथ ही परताराम से बातचीत शुरू हुई। परताराम के साथ उसके बड़े भाई, काका, चचेरे भाई व अन्य परिजन भी आकर बैठ गए और इन सबके साथ मिलकर परताराम ने अपने जीवन व काम के बारे में हमें विस्तार से जानकारी दी।

परताराम ने कभी स्कूल की दहलीज पर कदम नहीं रखा, निरक्षर परताराम ने 12 साल की उम्र में ही रोजगार कमाने का इरादा बनाया। उस समय परताराम का बड़ा भाई गजीग राम मुम्बई में एक हार्डवेयर की दुकान पर काम करता था। परताराम भी बड़े भाई की उंगली थामकर मुम्बई जा पहुंचा, जहां उन्होंने परताराम को उसी हार्डवेयर की दुकान में लगाया। परताराम इस दुकान में साफ-सफाई, झाड़ू-पोंछा, बिखरे

सामानों को एक जगह रखना जैसे कार्य करता और बदले में उसे 500 रुपए मासिक पगार स्वरूप मिलते। दुकान पर उसे रोज 12 घंटे (सुबह 7 से सायं 7 तक) काम करना पड़ता। परताराम एवं उसके भाई के रहने व खाने की व्यवस्था इसी दुकान के एक दूसरे हिस्से में की गई थी।

परताराम इस दुकान पर लगातार एक साल तक काम करता रहा। इसके बाद उसने मन नहीं लगने के कारण काम छोड़ने की अपनी इच्छा बड़े भाई को बताई। इस पर बड़े भाई ने उसे समझाया और कहा, “मैं गांव जाकर आता हूं, तब तक तुम यहीं रुककर काम करो। मेरे आने के बाद फैसला करेंगे।” बड़ा भाई इस प्रकार तसल्ली देकर गांव आ गया और परताराम पीछे अकेला रह गया। गांव आकर बड़े भाई ने शादी कर ली और फिर वापस मुम्बई गया ही नहीं। उधर मुम्बई में परताराम बड़े भाई का

2-

इंतजार करता रहा। इंतजार लम्बा होता गया लेकिन बड़ा भाई दुकान पर काम करने वापस नहीं आया। इस बात पर परताराम को काफी गुस्सा आया और उसने भी घर न जाने का फैसला कर लिया। अब उसने दुकान का काम छोड़ने की बजाय वहीं रहकर काम करने की ठान ली। इस प्रकार परताराम हार्डवेयर की उसी दुकान पर अगले सात साल तक काम करता रहा।

इन सात सालों में परताराम के परिवार वाले जरूर उसकी खैर-खबर ले लेते थे। परताराम की पगार में इस लम्बे अर्से में कोई परिवर्तन नहीं आया, फिर भी उसने काम नहीं छोड़ा, डटा रहा।

जब काम करते-करते एक ही जगह सात वर्ष पूरे हुए तो परताराम की इच्छा हुई कि क्यों ना मुम्बई छोड़कर कोई दूसरा कार्य किया जाए, और मनमौजी परताराम ने सहसा ही मुम्बई छोड़ दिया तथा अपने गांव मझेरा वापस आ गया। मुम्बई में कमाया व बचाया अपना सारा पैसा परताराम ने घर लाकर पिताजी को दे दिया। परताराम ने कितनी राशि पिताजी को दी यह उसे याद नहीं, पर उसके अनुसार दिए गए रुपए पिताजी ने उसी की शादी में खर्च कर दिए।

परताराम एक साल तक घर बैठने के बाद रेबारियों के साथ रहकर भेड़ चराने का काम करने लगा। ये सभी भेड़ राजस्थानी रेबारियों की थीं। परताराम मालवा क्षेत्र में भेड़ चराने जाता। इन भेड़ों को चराने के लिए तीन रेबारियों के अलावा एक स्वयं परताराम भी था। सभी लोग खुले में डेरे बनाकर रहते थे। इस काम के बदले परताराम को शुरुआती 6 माह में 300 रुपए प्रतिमाह मिले, फिर पगार बढ़कर 500 रुपए हुई, और डेढ़ साल बाद 700 रुपए। रेबारियों के साथ घूमता परताराम साल में एक-दो बार

(2)

ही घर आता था। परताराम ने भेड़ चराने का यह काम तीन साल तक किया, फिर छोड़ दिया। काम छोड़ने के बारे में परताराम कहता है, “वह काम बहुत खराब था। पूरे दिनभर घूमते-फिरते रहते, मन में आता था कि यह काम छोड़कर चिनाई का काम करूं लेकिन उम्र कम होने की वजह से परिवारवालों ने चिनाई का काम लेने से मना कर दिया। लेकिन फिर भी मैंने अपनी इच्छानुसार चिनाई कार्य को ही चुना।”

इस बार परताराम आमेट के घेरीलाल के संपर्क में आया। घेरीलाल अहमदाबाद के पाटिया इलाके में चिनाई कार्य का ठेकेदार था। परताराम भी घेरीलाल के साथ रहकर मजदूरी (बेलदारी) करने लगा। इस कार्य के लिए उसे 30 रुपए दैनिक मजदूरी मिलती। एक साल के भीतर ही परताराम बेलदारी का कार्य करते-करते मिस्त्री का काम सीख गया। अब घेरीलाल अहमदाबाद चिनाई कार्य में ठेके लेता जबकि परताराम वहां मिस्त्री का काम करता। परताराम की मजदूरी भी 30 रुपए से दुगुनी होकर 60 रुपए हो गई। उसने इस प्रकार घेरीलाल के साथ रहकर 6 माह तक चिनाई मिस्त्री का काम किया और फिर यह काम भी छोड़ दिया। यहां से काम छोड़ने के बारे में परताराम कहता है, “बेलदारी में (शुरु में) पैसा कम मिलता था, लेकिन मैंने चिनाई का काम छोड़ा नहीं। मुझे चिनाई का कार्य सीखना था। चिनाई का कार्य सीखकर जब मिस्त्री का काम करने लगा तो भी मुझे कम पैसा मिलता। घेरीलाल से पैसा बढ़ाने के लिए कहा लेकिन उसने पैसा बढ़ाया नहीं और इसीलिए मैंने वहां से काम छोड़ दिया।”

3-

अहमदाबाद से काम छोड़कर परताराम वापस गांव आ गया, जहां उसके गांव का एक व्यक्ति मारवाड़ इलाके के देसूरी कस्बे में मकान बना रहा था। उस व्यक्ति से जान पहचान के चलते परताराम चिनाई का काम करने देसूरी चला गया। वहां उसे 100 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती। रहने व खाने की व्यवस्था भी मकान मालिक की तरफ से ही होती। तीन माह का यह काम पूरा करने के बाद परताराम ने अपने गांव मझेरा आकर भी चिनाई के काम को ही जारी रखा, हालांकि गांव में कभी-कभार ही इस प्रकार का काम मिलता। परताराम 100 रुपए रोज की हाजरी के हिसाब से मजदूरी लेता और कभी-कभी केलवाड़ा में भी चिनाई करने चले जाता। इस प्रकार परताराम ने केलवाड़ा व मझेरा में 5 माह तक चिनाई कार्य किया।

अब तक परताराम का हाथ मंज गया था, वह चिनाई कार्य में निपुण हो गया था। मिस्त्री का काम करने के साथ-साथ उसने चिनाई कार्य के ठेके लेने की सोची। परताराम ने फिर अपना सबसे पहला ठेका केलवाड़ा के पास स्थित गंगलाइयां गांव में लिया।

(3)

इस काम में उसने सात और मजदूरों को काम पर लगाया और पांच माह के भीतर इस काम को पूरा कर दिया। दुबारा से ठेका ना मिलते देख परताराम भीलवाड़ा के बलवास में चिनाई का काम करने चला गया, जहां उसने हाजरी पर 125 रुपए दैनिक मजदूरी से काम किया। बलवास में उस समय एक व्यक्ति परताराम और अन्य मजदूरों से अपने पुराने मकान की मरम्मत करवा रहा था। परन्तु, बारिश आ जाने से उन्हें 22 दिन काम बीच में ही रोकना पड़ा और परताराम को भी बलवास से वापस गांव आना पड़ा।

गांव में कुछ दिन बैठने के बाद परताराम एक बार फिर घेरीलाल के संपर्क में आया। घेरीलाल के पास एक माह का काम था, इसलिए परताराम वापस मुम्बई चिनाई का कार्य करने चला गया। अब परताराम चिनाई कार्य में निपुण मिस्त्री हो गया था, इसलिए मुम्बई में उसे 300 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलने लगी। एक

4

माह बाद मुम्बई में काम पूरा करके परताराम गांव आ गया।

इन दिनों परताराम खेती कार्य की वजह से अपने गांव मझेरा आया हुआ है। कुछ ही दिनों के भीतर वह फिर से चिनाई कार्य करने चला जाएगा। इस बार वह अहमदाबाद में काम करने जा रहा है। परताराम

ने अहमदाबाद में एक बिल्डर से मकान बनाने का ठेका लिया है। हालांकि ठेकेदारी काम की बजाय परताराम मिस्त्री वाले काम को ही अच्छा मानता है। परताराम कहता है, “भविष्य में ठेकेदारी वाले काम की बजाय चिनाई कार्य में मिस्त्री बनकर ही काम करना चाहूंगा। मैंने दो बार ठेके लिए लेकिन इसमें काफी माथापच्ची करनी पड़ी। मजदूरों से काम को लेकर बहस होती। मिस्त्री का काम ही ठीक है। इस तरह के काम में दिन की निश्चित पगार तो मिल जाती है।”

इसी भागल के रहने वाले एक अन्य मिस्त्री दलाराम का भी कुछ ऐसा ही कहना था। दलाराम अपने चिनाई कार्य वाले व्यवसाय के बारे में कहता है, “परत्यो ठीक बोल रह्यो है। ठेकेदारी रो काम बड़ो मुश्किल है।”

वर्तमान संदर्भ में बात की जाए तो आज परताराम का परिवार सम्पन्न है। अपनी मेहनत की बदौलत परताराम ने खारचा भागल स्थित अपने मकान को पक्का बना लिया है। मझेरा में भी उसने जमीन खरीद ली है और वहां मकान बनाने के लिए करीब 30-35 हजार का सामान डलवा लिया है। जल्दी ही मझेरा में परताराम मकान बनाने का काम शुरू करवाने वाला है। परताराम के पास ही बैठे उसके बड़े बाबा दौलाराम कहते हैं, “परत्यो काम करके काफी पैसा कमा ल्यो है। कुएं पर इंजन लार रख दियो। म्हांने

भी कभी-कभार पिया दे देवे है।”

मुम्बई में हार्डवेयर की दुकान पर परताराम को ले जाकर काम पर लगाने वाले उसके बड़े भाई गजीगराम से भी बात हुई। परताराम के बारे में गजीगराम कहते हैं, “यह सही है कि परताराम मुझसे गुस्सा होकर सात साल तक मुम्बई से नहीं आया। परताराम मुम्बई में अकेला रहने से घबराता था। घर की याद सताती थी। इस वजह से एक साल में ही काम छोड़ने का फैसला भी कर लिया था। मैं चाहता था कि यह घबराने की बजाय वहां अकेला टिककर काम करे इसलिए परताराम को मैं छोड़ कर आ गया। इसी का नतीजा था कि परताराम मुम्बई में अकेला रुककर काम करता रहा और उसका डर दूर हो गया।”

शर्मिले स्वभाव के परताराम को आज किसी से कोई शिकायत नहीं है। वह बराबर अपने कार्य पर ध्यान दे रहा है। प्रवास करके परताराम ने पैसा कमाया और अलग-अलग तरह के कार्यों को करते हुए चिनाई कार्य में अपनी किस्मत आजमाई, जो उसके लिए सफलता के नए आयाम लेकर आया। परताराम निरक्षर है, लेकिन वह अपनी बनियान पर पैर जरूर लटका कर रखता है।

5-

परताराम इतना शर्मिला है कि अपनी पत्नी का नाम बताने में भी संकोच करता है। बहरहाल, परताराम अपनी रुचि के चिनाई कार्य को कभी मिस्त्री बनकर तो कभी ठेकेदार बनकर आगे बढ़ा रहा है। उसे कभी ठेकेदार बनने का अहंकार नहीं होता। अगर ठेके से काम मिल जाए तो ठीक वरना मिस्त्री बनकर ही हाजरी से काम कर लेता है। परताराम उन लोगों के लिए आदर्श है जो अपने ठेकेदार होने के गुरुर से बाहर नहीं निकल पाते। ठेकेदार होने की मोहर उन पर इस तरह लग जाती है कि वो ठेका लेकर ही काम करना पसंद करते हैं, भले ही उन्हें कितने ही दिन बिना काम के ही बैठना क्यों ना पड़े। परताराम सिर्फ ठेके कार्य पर ही आश्रित नहीं है वह एक कुशल मिस्त्री के रूप में भी काम करके अपने परिवार का पालन-पोषण करने को सदैव तैयार है।

अब धंधा, मंदा नहीं

कोटड़ा तहसील के मामेर गांव निवासी 24 वर्षीय जुमा बामणिया ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि एक दिन उसकी स्वयं की सिलाई की दुकान भी होगी। महज तीन साल की कठोर मेहनत से जुमा ने अपना मुकाम हासिल कर लिया। जुमा ने दो साल तक सिलाई का काम सीखकर स्वयं की दुकान लगाकर वह कर दिखाया जिसे करने में लोग सालों लगा देते हैं। दुबले-पतले शरीर वाला जुमा बामणिया पिछले सालभर से गुजरात के खेड़ब्रह्मा में सफलतापूर्वक सिलाई की दुकान चला रहा है।

जुमा से विस्तार से बातचीत करने के लिए आजीविका ब्यूरो की एक टीम खेड़ब्रह्मा स्थित उसकी दुकान पर पहुंची लेकिन वह दुकान पर नहीं मिला। जुमा अपने गांव मामेर गया हुआ था, जहां से वह चार घंटे बाद वापस दुकान पर आया। जुमा को जब यह पता चला कि कुछ लोग उससे मिलने आए हैं और बातचीत करना चाहते हैं तो वह कुछ घबरा गया। उसने अपने साथी किशन से कहा, “मैं इन लोगों से बात नहीं कर पाऊंगा।” जुमा जब टीम के सदस्यों के साथ दुकान पर बैठा चाय पी रहा था, तो उसके हाथ कांप रहे थे। टीम सदस्यों ने उसको विश्वास में लिया और कुछ देर सोचने के लिए समय दिया। लगभग आधे घंटे की अवधि के बाद जुमा अपने आपको बातचीत करने के लिए तैयार कर पाया और धीरे-धीरे अपने जीवन के उतार-चढ़ावों को हमसे बांटने लगा।

उसने बताया कि वह स्कूल में ज्यादा दिन नहीं पढ़ पाया। तीसरी कक्षा तक पढ़ने के बाद ही स्कूल से नाता टूटा और वह घरेलू कामों में लग गया। परिवार को खेती के कार्यों में भी मदद करने लगा। माता-पिता ने जुमा पर कोई काम-धंधा तलाशने, बाहर जा पैसे कमाने का दबाव नहीं डाला, नतीजतन जुमा को भी रोजगार हेतु कोई अन्य कार्य करने की इच्छा नहीं हुई। इस प्रकार दस वर्ष बीत गए।

जुमा 19 साल का हुआ तो उसकी मुलाकात, खेरवाड़ा के दयाराम से हुई। दयाराम गुजरात के भीलोड़ा शहर में सिलाई की दुकान चलाता था। मामेर गांव में दयाराम की रिश्तेदारी थी, अतः वह वहां आता-जाता रहता था। दयाराम ने जुमा को सिलाई का काम सीखने को कहा और जुमा ने दयाराम का सुझाव मान लिया। सिलाई का काम सीखने के लिए जुमा दयाराम के साथ भीलोड़ा शहर जा पहुंचा। वहां वह दयाराम के साथ रहता, उसके खाने का खर्चा दयाराम ही उठाता। जुमा बराबर अपने काम

में ध्यान देता रहा। दो साल तक जुमा ने पूरी लगन व मेहनत के साथ सिलाई का काम सीखा और वह सिलाई कार्य में निपुण हो गया। काम सीखने के दौरान दयाराम ने जुमा को एक भी पैसा नहीं दिया, बल्कि जुमा ने ही दयाराम को काम सिखाने के बदले एक हजार रुपए दिए। हालांकि, गांव आने-जाने का किराया दयाराम जरूर दे देता था।

पर जुमा महत्वाकांक्षी था, उसकी इच्छा थी कि वह किसी दूसरे की दुकान पर काम करने की बजाय खुद की ही दुकान करे। सो भिलौड़ा में दो साल बिताने के बाद जुमा वापस घर आ गया। जुमा के सामने अब एक स्पष्ट लक्ष्य था। उसने जो सिलाई कार्य सीखा था, उसे वह किसी भी तरह आगे बढ़ाना चाहता था। जुमा ने स्वयं की दुकान खोलने के बारे में अपने माता-पिता से चर्चा की। माता-पिता को भी अपने जुमा की काबिलियत पर विश्वास था और वे भी किसी ना किसी तरह अपना व्यवसाय जमाने में जुमा की मदद करना चाहते थे। पर परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण पैसों के अभाव में जुमा तुरन्त दुकान शुरू नहीं कर पाया। अपनी दुकान खोलने

6-

में उसे 6 माह का समय लग गया। जुमा के पिताजी ने किसी से 10 हजार रुपए उधार लेकर, बड़ी उम्मीद व विश्वास के साथ, काम शुरू करने के लिए अपने लाड़ले को दिए।

आखिरकार वह दिन भी आ गया जिसका जुमा को लम्बे समय से इंतजार था।

जुमा ने 26 जुलाई 2006 को गुजरात के खेड़ब्रह्मा में “मोनिका टेलर्स” के नाम से सिलाई की दुकान खोल ली। यह दुकान उसने 800 रुपए महीने के किराए पर ली। जुमा को 5 हजार रुपए दुकान मालिक को अग्रिम राशि के तौर पर देने पड़े, शेष 5 हजार रुपए में सिलाई की मशीन व अन्य सामान खरीदा।

जुमा की दुकान के आसपास सिलाई की दो और दुकानें पहले से ही थीं और दूसरी तरफ खेड़ब्रह्मा में उसे नया-नया काम शुरू करना था, वहां उसका कोई जान-पहचान वाला नहीं था। प्रतिस्पर्धा के दौर में बिना किसी जान-पहचान के अपनी दुकान जमाए रखना ही जुमा के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी। शुरुआती दिनों के बारे में जुमा कहता है, “शुरुआत के दो महीनों में दुकान का किराया निकालना तक मुश्किल था। महीने में 4-5 ही ग्राहक आते और वे भी मेरे गांव मामेर से। मन में अजीब-अजीब खयाल आते। एक डर बना रहता। हमेशा सोचता रहता कि धंधा चल भी पाएगा या नहीं।”

कुछ महीने काम जरूर मंदा रहा, लेकिन जुमा ने हिम्मत नहीं हारी। खेड़ब्रह्मा में लोगों से धीरे-धीरे पहचान होने लगी। काम भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पांचके महीने बाद, जुमा अपने छोटे भाई रामलाल को भी दुकान पर ले आया और सिलाई का काम

सिखाने लगा। दुकान पर भाई को लगाने के लिए जुमा ने एक और मशीन खरीद ली। इस प्रकार छोटा भाई भी जुमा को सिलाई कार्य में मदद करने लगा। त्योंहारों के वक्त काम इतना बढ़ जाता कि आर्डर पूरा करने के लिए जुमा ने एक और मशीन खरीद ली और उसे चलाने के लिए एक और लड़के को भी दुकान पर रख लिया। अब जुमा की दुकान पर तीन सिलाई की मशीनें हो गईं, काम करने वाले भी बढ़कर तीन हो गए।

पिछले एक वर्ष से खेड़ब्रह्मा के अराधना टॉकीज के सामने जुमा सिलाई की दुकान कर रहा है। इस एक वर्ष की अवधि में जुमा ने अपने बलबूते पर कार्य को आगे बढ़ाया है। दुकान के आगे के आधे हिस्से में सिलाई का सामान रखा है तो दूसरे हिस्से में रहने की व्यवस्था कर रखी है।

आज जुमा अपने पिता के साथ कंधे से कंधा मिलाते हुए अपने पूरे परिवार की आजीविका का सहारा बना हुआ है। दुकान से महीने में खर्चा निकालकर उसे 4 हजार

7-

रुपए तक की आमदनी हो जाती है। जुमा के 5 भाई व 6 बहनें हैं, पर बड़े होने का कर्तव्य जुमा बखूबी निभा रहा है। वह खुद तो ज्यादा पढ़ नहीं पाया, लेकिन अपने छोटे भाई-बहनों को जरूर पढ़ाना चाहता है। जुमा की अभी शादी नहीं हुई है, लेकिन अपनी

शादी से पहले वह अपनी बहनों के हाथ पीले करना चाहता है।

दुकान से पर्याप्त आमदनी होने के कारण अब जुमा ने 18 हजार रुपए में एक पुरानी मोटरसाइकिल भी खरीद ली है। यह मोटरसाइकिल किशतों में ली थी, जिसकी पूरी किशतें जुमा ने चुका दी हैं। जुमा कहता है, “मुझे खुशी है कि मैंने अपने काम को आगे बढ़ाया और माता-पिता की उम्मीदों पर खरा उतरा। मेरा काम ठीक चल रहा है। तीज-त्यौहारों के समय काम बढ़ता है और आमदनी भी अच्छी होती है। खेड़ब्रह्मा में जान-पहचान भी हो गई है जिससे मामेर गांव के अलावा यहां से भी लोग कपड़े सिलवाने के लिए मेरे पास आते हैं। मेरे आस-पड़ोस में सिलाई की और दुकानें होने के बावजूद भी मुझे किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती है।”

जुमा ने न केवल अनजान शहर में धीरे-धीरे अपनी पहचान बनाई बल्कि शुरुआत में कार्य मंदा होने के बावजूद भी अपना हौसला व धैर्य बनाए रखा। निःसंदेह यह जुमा की मेहनत का ही नतीजा है कि उसने जो कार्य सीखा उसे आगे बढ़ाया।

(8)

पैसा ही सब कुछ नहीं

नारूराम गमेती ने पंद्रह वर्ष की उम्र में साड़ी कटिंग से अपने काम की शुरुआत की। गांव से काफी लोग साड़ी कटिंग के काम से सूरत जाते थे सो वह भी चला गया और वहां जाकर इस काम में ऐसा रच बस गया कि दूसरा कोई काम करने की इच्छा ही नहीं हुई। इस काम को करते हुए उसने न केवल अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया वरन् अपने परिवार और गांव के कई अन्य किशोरों को इस काम में स्थापित भी किया। उसने खुद ने तो कारीगर बने रहना ही पसंद किया किन्तु अपने सिखाए नौजवानों को ठेकेदार बनकर अच्छी कमाई करते हुए देख खूब खुशी का अनुभव भी किया। इसी के चलते आज साड़ी व्यवसाय में नारूराम एक जाना पहचाना नाम है।

राजसमंद जिले की कुम्भलगढ़ तहसील के कड़िया गांव के 27 वर्षीय नारूराम के प्रवास अनुभव के बारे में बातचीत करने हम एक दिन सवेरे 7.30 बजे कड़िया गांव की वेन तलाई पहुंचे। पिछले कुछ दिनों से नारूराम अपने घर पर मकान की मरम्मत का कार्य करवा रहा है, इसलिए सुबह के वक्त वह चिनाई कार्य के लिए मिस्त्री व मजदूरों का इंतजार करता मिला। हमने नारूराम से बातचीत करने के लिए समय मांगा, लेकिन नारूराम ने बात करने के लिए मना कर दिया। उसका कहना था कि घर पर मिस्त्री के आने का समय हो रहा है। मुझे भी उनके साथ काम करना है। पर सच्चाई यह थी कि नारूराम हमसे बातचीत करने में झिझक रहा था। उसको डर था कि हम न जाने क्या लिखेंगे ? मिस्त्री आने का तो उसका एक बहाना था। वहां के माहौल को देखकर हमने नारूराम को विश्वास में लिया। आखिरकार, विशेष अनुरोध व विश्वास के चलते नारूराम बात करने को तैयार हुआ।

नारूराम ने बताया कि घर की आर्थिक स्थिति ठीक ना होने की वजह से वह पांचवीं कक्षा से ज्यादा नहीं पढ़ पाया। पांचवीं कक्षा तक की पढ़ाई कड़िया गांव के पास ऊंटडों की भागल स्थित स्कूल से की। उस समय नारूराम की उम्र पंद्रह वर्ष थी। स्कूल छोड़ने के साथ ही उसने कोई कामकाज करने का मन बनाया

8-

(9)

और सुदकों का घोड़ा निवासी पदम सिंह के संपर्क से एक अनजान शहर सूरत चल दिया। पदम सिंह सूरत के रिंग रोड स्थित कपड़ा बाजार में साड़ी कटिंग की दुकान करता था। सूरत जाते समय नारुराम के पास किराए के पैसों के अलावा कुछ भी नहीं था। नारुराम सूरत में पदम सिंह के साथ रहकर दुकान पर साड़ी कटिंग का काम

9-

सीखने लगा। उसके रहने व खाने की व्यवस्था पदम सिंह के यहां ही की गई थी।

नारुराम, पदम सिंह के साथ मिलकर व्यवसाय के गुरु सीख ही रहा था कि पदम सिंह की दुकान पर किसी से नॉक-झॉक हो गई। पदम सिंह ने अपना गुस्सा नारुराम पर

निकाला। इससे क्षुब्ध होकर नारुराम ने पदम सिंह की दुकान का काम छोड़ दिया और वापस घर आ गया।

इस झगड़े के बारे में एक अन्य साड़ी कटिंग व्यवसायी मोहन सिंह को पता चला। मोहन सिंह भी सूरत के उसी बाजार में साड़ी कटिंग की दुकान पर काम करता था और कुम्भलगढ़ तहसील के आंतरी गांव का रहने वाला था। मोहन सिंह को जब पता चला कि नारुराम उसी के गांव के पास का रहने वाला है तो वह अपने साथ नारुराम को फिर सूरत ले गया। मोहन सिंह ने नारुराम को सूरत में अपने किसी अन्य परिचित दौलत सिंह की दुकान पर साड़ी कटिंग कार्य के लिए लगा दिया। नारुराम को शुरुआत में यहां महीने की 200 रुपए पगार मिलने लगी। डेढ़ साल बाद उसकी पगार दो सौ रुपए से बढ़कर पांच सौ रुपए कर दी गई। इसके बाद तो हर दो-तीन महीने के अंतराल में नारुराम की पगार बढ़ती रही और पांच साल के बाद वह बढ़कर 900 रुपए हो गई।

इन पांच सालों में नारुराम साड़ी कटिंग कार्य में निपुण हो गया था। वह शादी करने के लिए वापस अपने गांव कड़िया आया, जहां उसने अपनी शादी का सारा खर्चा स्वयं उठाया। इस दौरान आंतरी के मोहनसिंह ने भी सूरत में अपनी स्वयं की अपनी साड़ी कटिंग की दुकान खोल ली, और नारुराम के सामने अपनी दुकान पर काम करने का प्रस्ताव रखा। नारुराम झट से राजी हो गया, क्योंकि मोहनसिंह ही वह शख्स था जिसने नारुराम को जरूरत के समय काम पर लगवाया था। नारुराम अब मोहनसिंह की दुकान पर काम करने लगा।

चूंकि नारुराम साड़ी कटिंग का कार्य अच्छी तरह जान गया था इसलिए मोहन सिंह ने उसे एक हजार रुपए महीने की पगार पर काम पर रख लिया। मोहनसिंह ने नारुराम को अलग से किराए पर एक कमरा भी लेकर दिया, जिसमें नारुराम के साथ

चार और भी लोग रहते थे। नारुराम के रहने व खाने का सब खर्चा मोहनसिंह वहन करता। नारुराम को यहां सुबह 10 बजे से रात 10 बजे तक काम करना होता, रविवार का अवकाश रहता। नारुराम की पगार भी हर साल दो सौ रुपए बढ़ती गई। इसी दौरान नारुराम ने अपने छोटे भाई मोहनराम को भी अपने साथ सूरत लाकर काम पर लगा दिया। मोहनराम भी मोहनसिंह की ही दुकान पर रहकर साड़ी कटिंग का काम सीखने लगा।

छह साल तक लगातार नारुराम मोहनसिंह की दुकान पर साड़ी कटिंग का काम करता रहा। इस दौरान मोहनसिंह माता के मंदिरों में चढ़ने वाली चुनरी भी बनाने लगा, जिसका जिम्मा उसने नारुराम को सौंपा। अतः साड़ी कटिंग के साथ-साथ ही नारुराम माता की चुनरी बनाने के कार्य भी करने लगा। नारुराम न केवल चुनरी बनाता बल्कि पैकिंग करके मंदिरों व अन्य गांव-कस्बों में स्थित दुकानों पर भी ले जाता। इस काम को करने पर, नारुराम की पगार में बढ़ोतरी हुई अब उसको तीन हजार रुपए मासिक रूप से मिलने लगे।

चुनरी बनाने से पहले नारुराम ने मोहनसिंह के साथ साझेदारी में भी काम किया था। दोनों ने साड़ी कटिंग के व्यवसाय में पैसा लगाया और साथ काम किया, लेकिन यह प्रयोग डेढ़ साल तक ही चल पाया। इस बारे में नारुराम कहता है, “मैं साड़ी कटिंग का कार्य अच्छा सीख गया था। मोहनसिंह के साथ मिलकर काम भी अच्छा कर रहा था। इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न मोहनसिंह के साथ साझेदार के रूप में काम किया जाए। यह सोचकर साझे काम में मैंने पैसा भी लगाया, लेकिन डेढ़ साल बाद ही मैंने साझेदारी से अपने आपको अलग कर लिया क्योंकि इस तरह काम करने से पैसा नहीं बच पा रहा था। अतः मैंने साझे में काम करने की बजाय एक निश्चित पगार पर काम करना ही मुनासिब समझा।”

मोहनसिंह के साथ काम करते-करते एक समय ऐसा भी आया था जब नारुराम तीन हजार रुपए में एक सिलाई मशीन खरीद लाया। इस सिलाई मशीन को नारुराम ने अपने अलग रिहायशी कमरे पर लगाने की ठानी ताकि वह अलग से भी काम लेकर पैसा कमा सके। नारुराम ने इसके लिए न केवल 800 रुपए महीने से किराए पर अलग से कमरा लिया बल्कि अपनी पत्नी को भी गांव से सूरत ले गया। फिर नारुराम ने अपनी पत्नी को भी सिलाई काम सिखाया। अब नारुराम की पत्नी कमरे में रहकर दिन में चुनरी बनाने का काम करती। नारुराम को जब भी समय मिलता तो वह भी चुनरी बनाने का काम करता।

10-

डेढ़ साल तक यह सिलसिला यूँ ही चलता रहा। पर उसकी पत्नी को खेती की जमीन पर काम करने की वजह से साल में बीच-बीच में घर जाना पड़ता और तब नारुराम को भी अपनी मशीन पर काम करने का समय नहीं मिल पाता। अतः नारुराम को यह काम बंद करना पड़ा। उसने अपनी मशीन दो हजार रुपए में बेच दी तथा पत्नी को वापस गांव छोड़ आया।

आज नारुराम पिछले सात साल से मोहन सिंह के साथ रहकर साड़ी कटिंग का काम कर रहा है। इसके साथ ही चुनरी भी बना रहा है। वह अपने काम से संतुष्ट है। अब उसे नियमित रूप से महीने के तीन हजार रुपए मिल रहे हैं, और नारुराम को खुशी है कि वह लम्बे समय से सूरत में एक जगह टिककर काम कर रहा है।

नारुराम अपने सूरत प्रवास के बारे में कहता है, “शुरुआत में सूरत में मन ही नहीं लगता था। कभी भी मैं अकेला नहीं रहता था। अपने साथ किसी ना किसी को रखता था। गाड़ी-घोड़ों से भी डर लगता था।” अपने काम के बारे में नारुराम आगे कहता है, “साड़ी कटिंग के काम में मेरे गांव से काफी लोग जाते थे और उनको देखकर मैं भी चला गया और इस काम में इस तरह जा घुसा कि दूसरा कोई काम करने की इच्छा ही नहीं हुई। मुझे अच्छा पैसा भी मिलता रहा और काम भी अच्छा लगा।”

नारुराम ने अपने काम की बदौलत कमाएँ पैसों से न केवल स्वयं की बल्कि अपने दोनों छोटे भाइयों की भी शादी करवाई। एक वह समय था जब नारुराम का मकान केलूपोश से बना था लेकिन आज उसी जगह पर तीन पक्के कमरे खड़े हैं। पिछले कुछ दिनों से नारुराम ने अपने घर पर चिनाई कार्य भी शुरू करवा रखा है। अभी तो उसे अपने मकान को और भी बढ़ाना है। उसने अपने दोनों छोटे भाइयों को भी सूरत ले जाकर काम पर लगाया है और पिताजी द्वारा लिया गया कुछ पुराना कर्जा भी धीरे-धीरे करके उतार दिया है।

पूरे वेन तलाई में लगभग 15 लोग साड़ी कार्य से जुड़े हैं। कुछ साड़ी कटिंग का काम

11-

सीख रहे हैं तो कुछ काम कर रहे हैं। इनमें से नारुराम का भाई व पड़ौसी हेमाराम साड़ी कार्य में ठेकेदार बन गए हैं। गौरतलब है कि नारुराम ने ही हेमाराम को शुरु-शुरु में सूरत में काम पर लगाया था। आज वही हेमाराम साड़ी कार्य में ठेके लेने लग गया है। हेमाराम ने

नारुराम के बारे में बताया, “आज से चार साल पहले नारुराम ही मुझे लेकर सूरत गया था, जहां मुझे हैल्पर का काम मिला। अगर नारुराम मुझे लेकर नहीं जाता तो मैं आज यहां तक नहीं पहुंच पाता।”

आंतरी गांव के लालाराम गमेती को भी नारुराम ने ही काम पर लगाया था। लालाराम कहता है, “नारु ने ही मुझे सूरत ले जाकर काम सिखाया। अगर आज मैं साड़ी कटिंग कार्य में ठेकेदार बना हूँ तो सिर्फ नारुराम की वजह से।” नारुराम के छोटे भाई मोहनराम ने भी अपने बड़े भाई के बारे में बताया, “जब नारु ने मुझे काम पर लगाया था तब मुझे सौ रुपए महीने मिलते थे। बड़े भाई को मेहनत से काम करता देखकर मैं भी मेहनत करके आगे बढ़ता गया। आज मैं साड़ी कटिंग के कार्य में ठेके लेता हूँ। हालांकि नारुराम मुझसे कम पैसा कमा रहा है लेकिन जो पैसा नारुराम नहीं कमा पा रहा वो मैं ठेकेदार के रूप में कमाकर घर पर लाकर देता हूँ।”

12-

जिन लोगों को नारुराम ने काम पर लगाया वे आज अच्छा पैसा कमा रहे हैं। वे ठेकेदार बन चुके हैं। पर नारुराम कहता है, “मुझे पता है कि ये लोग मुझसे ज्यादा पैसा कमा रहे हैं। इसका कारण यह है कि यह सभी ठेके से काम लेकर करते हैं। अगर चाहता तो मैं भी ठेके पर काम लेकर कर सकता था, लेकिन इसमें कई परेशानियाँ भी होती हैं। समय पर काम करके देना, मजदूरों से माथापच्ची, जैसे समय पर ना मिलना जैसे कई कारण हैं जो मुझे ठीक नहीं लगते। इसलिए मैं इस तरह के कार्य की बजाय फिलहाल तय पगार पर ही काम कर रहा हूँ।” परन्तु नारुराम को इस बात की जरूर खुशी है कि जिन लोगों को उसने गांव से ले जाकर सूरत में काम पर लगाया, वे सभी आज अच्छा काम कर रहे हैं।

पिछले पंद्रह सालों से नारुराम पूरी लगन व मेहनत से अपने काम को आगे बढ़ा रहा है। नारुराम उन लोगों के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है जो सिर्फ प्रवास करके पैसों को ही ज्यादा वरीयता देते हैं। ऐसे लोग पैसा कमाकर भी अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हो पाते, जबकि नारुराम कम पैसा कमाकर भी अपना काम पूरी लगन व ईमानदारी से करता रहा है। साथ ही उसने कई लोगों को काम और भावी दिशा तलाशने में मदद भी की है।

सीखने की लगन ने पहुंचाया इस मुकाम पर

छोटूलाल गरासिया की बचपन से ही इच्छा थी कि वह बड़ा होकर ऑटो पार्ट्स व साइकिल मरम्मत का काम करे। छोटूलाल का छुपटपन का यह सपना पूरा हुआ। पिछले 15 वर्षों से छोटूलाल देवला में सफलतापूर्वक साइकिल मरम्मत व ऑटो पार्ट्स की दुकान चला रहा है। पर वह इस मंजिल तक आसानी से नहीं पहुंचा, इसके लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा।

13-

छोटूलाल का जन्म 24 अप्रैल 1969 को कोटड़ा तहसील में देवला गांव के भीम वेशी फला निवासी—कालूराम गरासिया के यहां हुआ। संयुक्त परिवार में जन्म लेने के कारण उसको परिवार के सभी सदस्यों का प्यार व दुलार मिला। छोटूलाल ने अपनी शुरुआती शिक्षा (पांचवी कक्षा तक) देवला से ही की। पांचवी कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, आगे की पढ़ाई करने से छोटूलाल के पिताजी ने उसे मना कर दिया। पिता की इच्छा थी कि छोटूलाल पढ़ने की बजाय कोई कामकाज करे। परिवार में सबसे बड़ा पुत्र होने के नाते माता—पिता का छोटूलाल पर कामकाज के लिए इस प्रकार का दबाव डालना स्वाभाविक था। परन्तु छोटूलाल ने आगे पढ़ाई जारी रखने का फैसला किया। बेटे की दृढ़ इच्छाशक्ति के सामने पिताजी को झुकना पड़ा और छोटूलाल ने मालवा का चौरा गांव स्थित विद्यालय में छठी कक्षा में प्रवेश ले लिया।

पढ़ने के लिए छोटूलाल देवला से मालवा का चौरा गांव तक आठ किलोमीटर रोज पैदल जाता। आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई उसने मालवा का चौरा गांव से ही की। सन् 1986 में आगे पढ़ाई करने के लिए छोटूलाल सिरौही गया, जहां वह अपने किसी रिश्तेदार के यहां रुका। सिरौही में पढ़ाई करने के साथ—साथ छोटूलाल को महसूस होने लगा कि कोई कामकाज भी करना चाहिए, जिससे स्वयं का खर्चा चलता रहे। उसने निर्णय लेने में देरी नहीं की। अपने किसी परिचित की जान—पहचान से छोटूलाल को जल्द ही सिरौही में बेलदारी का काम मिल गया।

अपने इस पहले काम के बारे में छोटूलाल ने घर पर किसी को नहीं बताया। उसको

दिन का काम करने के बदले पांच रुपए दैनिक मजदूरी के रूप में मिलते। वह महीने में दस—बारह दिन काम करता और बाकि समय पढ़ाई। नवीं कक्षा उत्तीर्ण करने तक छोटूलाल यूं ही लोगों से नजर बचाकर काम करता रहा। दसवीं कक्षा में पढ़ाई करने के दौरान उसकी पहचान साइकिल मरम्मत करने वाले एक दुकानदार से हुई। छोटूलाल को जिस मंजिल की तलाश थी वह उसे यहां दिखाई दी और वह साइकिल मरम्मत की दुकान पर काम करने लगा। दुकान पर वह साइकिल मरम्मत करने में मालिक की मदद करता, पंचर निकालता और अन्य छोटे—मोटे कार्य करता। इसके बदले उसे मासिक 100 रुपए मिलते। इस पगार से छोटूलाल का न केवल खर्चा निकलने लगा, बल्कि उसे अपनी पसंद का काम सीखने का भी मौका मिल गया। इस दुकान पर छोटूलाल ने बिना परिवारजनों को बताए, आठ महीने तक काम किया। अपने सिरौही प्रवास के बारे में छोटूलाल कहता है, “अगर मैं अपने माता—पिता का विरोध नहीं करता तो शायद पांचवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ पाता। दबाव के बीच मैंने स्वयं पढ़ाई जारी रखने का निर्णय किया और देवला से मालवा का चौरा और फिर सिरौही पढ़ाई करने पहुंचा। यहां पहुंचकर न केवल दसवीं कक्षा उत्तीर्ण की बल्कि कुछ कामकाज करके अपना खर्चा भी निकालने लगा। साइकिल मरम्मत वाला काम सीखने की मेरी इच्छा थी जो सिरौही आकर पूरी हुई। आठ महीने के भीतर मैं साइकिल मरम्मत का काम भी सीख गया।”

सन् 1987 में छोटूलाल सिरौही से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करके देवला गांव आ गया। कुछ दिन घर रहने के बाद उसने अपने भविष्य के बारे में सोचना शुरू किया। साइकिल मरम्मत का काम वह सीख चुका था। अब उसे लगा कि क्यों न डीजल मैकेनिक का काम भी सीख लिया जाए। छोटूलाल ने यह निर्णय भी स्वयं लिया और डीजल मैकेनिक का प्रशिक्षण करने के लिए पिण्डवाड़ा में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई.टी.आई.) में प्रवेश लिया। छोटूलाल को आई.टी.आई. के छात्रावास में कमरा भी मिल गया। पिण्डवाड़ा में छह माह का प्रशिक्षण पूरा करके वह देवला गांव लौट आया।

14-

छोटूलाल न केवल साइकिल मरम्मत का काम जान गया था, बल्कि एक योग्य डीजल मैकेनिक भी बन गया था। अब उसे जरूरत थी तो एक दुकान की, जहां से अपने कामकाज की शुरुआत कर सके। लेकिन कामकाज शुरू करने के लिए पैसा चाहिए था। छोटूलाल ने बताया, “पिण्डवाड़ा से आई.टी.आई. पूरी करके देवला आ तो गया लेकिन यहां आकर मन नहीं लगता। काम के बारे में अच्छी समझ पैदा हो गई थी। जी करता

कि अपना स्वयं का काम शुरू करूँ लेकिन पैसों का अभाव था। आखिरकार, पैसा कमाने, अपनी पूंजी जुटाने के लिए मैंने मेहनत—मजदूरी करने का निर्णय लिया। चिनाई कार्य से जो पैसा कमाया उसे धीरे—धीरे जमा करके अपने खुद के धंधे की नींव रखी।”

सन् 1988—89 में देवला गांव के किसी जान—पहचान वाले के माध्यम से छोटूलाल पाली जिले के सुमेरपुर क्षेत्र में गया, जहां छोटूलाल को बेलदारी का काम मिला।

15-

लगभग पूरे महीने लगातार उसे बेलदारी का काम मिलता रहा। छोटूलाल एक ही मिस्त्री के साथ रहकर काम करता और बदले में उसे प्रतिदिन मिलते 15 रुपए। छोटूलाल कुशाग्र था उसने मजदूरी का कार्य करते—करते ही मिस्त्री का काम करने वाले लोगों से दोस्ताना

व्यवहार बनाकर मिस्त्री का काम सीख लिया। तीन महीने बेलदारी का काम करने के बाद छोटूलाल स्वयं एक मिस्त्री भी बन गया। मिस्त्री बनने के बाद उसकी मजदूरी 15 रुपए से बढ़कर 60 रुपए प्रतिदिन हो गई। छोटूलाल ने सुमेरपुर में इस पगार पर एक वर्ष तक काम किया। उसके बाद मेहनताने से असंतुष्टि के चलते वह सुमेरपुर से देवला गांव आ गया। अपने गांव आकर भी चिनाई के कार्य को जारी रखा और 75 रुपए दैनिक मजदूरी कमाने लगा। उसने दो माह तक देवला गांव में इस प्रकार चिनाई का काम किया।

अब तक छोटूलाल के पास कुछ पूंजी जमा हो गई थी। सन् 1991 में उसने अपनी इस जमा पूंजी का निवेश कर एवं कहीं से उधार लेकर, देवला में ही 100 रुपए किराए से स्वयं की साइकिल मरम्मत की दुकान खोली। उदयपुर जाकर वह दुकान के लिए सामान व पांच साइकिलें भी खरीद लाया, उन साइकिलों को छोटूलाल किराए पर देता।

उस समय देवला गांव में छोटूलाल की ही एकमात्र साइकिल मरम्मत की दुकान थी, सो कामकाज अच्छा चलने लगा। छोटूलाल की मेहनत रंग लाने लगी थी। दुकान पर बढ़ते काम व लोगों की मांग के अनुसार छोटूलाल ने दुकान में ऑटो पार्ट्स का सामान रखना और अतिरिक्त सेवाएं प्रदान करना भी शुरू कर दिया। इस सभी सामान को खरीदने के लिए छोटूलाल ने मालवा का चौरा स्थित पंजाब नेशनल बैंक से 25 हजार रुपए का ऋण भी लिया। पांच साल तक किराए की दुकान से व्यवसाय करने के बाद छोटूलाल ने वह दुकान भी खरीद ली।

छोटूलाल को अपने काम में दो बार बड़ा नुकसान भी उठाना पड़ा। सन् 1993 में

उसकी दुकान से लगभग 15 हजार रुपए का सामान चोरी हो गया। वहीं, दूसरी तरफ, पिछले वर्ष भारी बारिश की वजह से उसकी दुकान में पानी घुस गया और दुकान में रखा काफी सामान खराब हो गया। इस प्राकृतिक कहर के चलते उसे लगभग 70 हजार रुपए का नुकसान उठाना पड़ा। इस नुकसान की भरपाई छोटूलाल ने अपने दोस्तों से कर्जा लेकर की।

पिछले 15 वर्षों से छोटूलाल सफलतापूर्वक देवला गांव में साइकिल मरम्मत व ऑटो पार्ट्स की दुकान चला रहा है। अपने इस व्यवसाय के बारे में छोटूलाल कहता है, “अन्य कार्यों में जहां प्रतिस्पर्धा होती है, वहीं मेरे काम में मुझे कभी किसी से प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ा। हर महीने 5—6 हजार रुपए की आमदनी हो जाती है। हां, यह जरूर है कि कभी—कभार लोग उधारी में भी सामान खरीद कर ले जाते हैं। उधारी का पैसा समय पर कभी आ जाता है तो कभी नहीं भी। दुकान पर तीन और लोग काम करने के लिए रख रखे हैं जिनको 40 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी देता हूँ। भविष्य में इस काम को आगे बढ़ाते हुए पिण्डवाड़ा में दुकान करने का विचार है।”

छोटूलाल ने 1997 में एक जीप भी खरीदी। जो कि 50 हजार रुपए नकद में व बाकी पैसा किस्तों में चुकाकर ली। छोटूलाल के पास यह जीप अभी तक है जिसे वह देवला से पिण्डवाड़ा मार्ग पर सवारी गाड़ी के रूप में चलाता है। इस जीप पर छोटूलाल ने अपने छोटे भाई को ही ड्राइवर लगा रखा है।

छोटूलाल ने 1995 में राजनीति में भी भाग्य आजमाया। उसने सरपंच का चुनाव लड़ा लेकिन 15 मतों से हार गया। पांच साल बाद एक बार फिर से राजनीति में अपनी किस्मत आजमाई और वार्ड संख्या 21 से पंचायत समिति सदस्य का चुनाव लड़ा। इस बार छोटूलाल 60 मतों से विजयी घोषित हुआ और अगले पांच वर्ष तक पंचायत समिति का सदस्य रहा।

16-

छोटूलाल आज न केवल एक सम्पन्न व्यक्ति है बल्कि उसका समाज में मान—सम्मान भी है। संयुक्त परिवार का होने की वजह से पूरे परिवार की जिम्मेदारी छोटूलाल भली—भांति संभाल रहा है। वे चारों भाई एक ही मकान में एक साथ रहते हैं।

केलूपोश से बने अपने कच्चे मकान को भी छोटूलाल ने पक्का बना लिया है। अपने परिवार के बारे में छोटूलाल कहता है, “घर में बड़ा होने के नाते मैं अपनी जिम्मेदारी समझता हूँ। पूरे परिवार को एक साथ लेकर चलना ही मेरी प्राथमिकता होती है। हम सभी भाइयों में आपस में बहुत प्यार व स्नेह है। घर में मौजूद सभी बच्चों का मैं ध्यान

रखता हूँ। छोटे भाइयों के बच्चों को भी जरूरत होने पर खर्चा देता हूँ।”

छोटलाल के अपने 3 बच्चे हैं, जिनमें सबसे बड़ी लड़की मीनाक्षी आठवीं कक्षा में है, तो उससे छोटे दो लड़के क्रमशः छठी व तीसरी कक्षा में पढ़ रहे हैं। अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य व बेहतर परवरिश के बारे में छोटलाल तपाक से बोलते हैं, “लड़की को बी.ए. तक पढ़ाऊंगा। अपने बच्चों के साथ-साथ छोटे भाइयों के बच्चों को भी पढ़ाना है। पढ़ाई न करने का जो दबाव एक समय मुझ पर पड़ा था वह इन बच्चों पर नहीं होगा।” छोटलाल के पिण्डवाड़ा जाकर दुकान शुरू करने के पीछे एक यह भी मकसद है कि वहां उसके बच्चों की पढ़ाई-लिखाई अच्छे से हो पाएगी और परिवार के रहन-सहन का स्तर भी सुधरेगा।

बेरोजगार युवाओं के लिए छोटलाल का संदेश है : “बेरोजगारी की वजह अशिक्षा है। साथ ही नौजवान नियमित रूप से काम भी नहीं करते। हमारी संस्कृति ऐसी बन गई है कि युवा कमाए हुए पैसे जब तक पूरी तरह खर्च न कर दें, तब तक दूसरा काम ढूंढने की कोशिश नहीं करते। अगर हमारे क्षेत्र में कुछ कारखाने-जैसे सीमेंट प्लांट आदि-खुल जाएं तो कुछ हद तक क्षेत्र में बेरोजगारी कम होगी और क्षेत्र का विकास

17-

भी होगा।” जल्द ही देवला से गुजर कर जाने वाले निर्माणाधीन राष्ट्रीय राजमार्ग के बारे में छोटलाल ने बताया, “इस ‘फोर लेन’ से गांव के लोगों को कोई विशेष फायदा नहीं होने वाला, क्योंकि जब लोगों के पास पैसा ही नहीं होगा तो राजमार्ग पर भला वे क्या धंधा जमा पाएंगे।”

कहने को तो छोटलाल का प्रवास ज्यादा दिन का नहीं रहा, किन्तु जो समय उसके प्रवास में बीता वह अहम साबित हुआ। चिनाई का काम करके उसने जो पैसा कमाया, उसी पैसे से छोटलाल ने अपनी साइकिल मरम्मत के काम की शुरुआत की। छोटलाल उन लोगों के लिए एक आदर्श है जो अपने घरों से पलायन करके काम करने बाहर जाते हैं, खूब पैसा कमाते हैं, लेकिन उस पैसे का सदुपयोग नहीं कर पाते। न ही अपने अनुभवनों का सार्थक उपयोग कर पाते हैं। छोटलाल ने महज दो साल के प्रवास के बल पर पैसा कमाया और अपने स्थाई धंधे की नींव रखी।

बड़ा भाई न लाता तो...

चंदूलाल पारगी ने पेट भरने को क्या कुछ नहीं किया पशु चराए, रेस्ट्रॉ में खाना बनाया और बर्तन तक धोए। अंततः उसे अपनी पसंद का काम मिल गया। पिछले पंद्रह वर्षों से वह गुजरात के खेड़ब्रह्मा शहर में फल का टेला लगा रहा है।

कोटडा तहसील के गोड़ामारी गांव के 35 वर्षीय चंदू ने बताया कि वह महज 15-20 दिन ही स्कूल में पढ़ा। बचपन में चंदू के गांव के एक लड़के को स्कूल जाते समय कुछ लोगों ने मार-पीटकर कुएं में डाल दिया था। इस घटना से चंदू के परिजनों में भी डर बैठ गया और उन्होंने चंदू को स्कूल भेजना बंद कर दिया। स्कूल छोड़ने के बाद नन्हा चंदू अपने गांव के आसपास सटे जंगलों में अपने घर के पशु चराने लगा।

उस समय चंदू के बड़े भाई गुजरात के खेड़ब्रह्मा में भाग की खेती में जाते थे। चंदू के स्कूल छोड़ने के लगभग चार साल बाद उसका बड़ा भाई उसे अपने साथ खेड़ब्रह्मा ले आया, उस समय चंदू की उम्र लगभग 10-12 साल ही थी और वर्ष था 1984। अतः उसके भाई ने

18-

चंदू को भाग के खेत में काम दिलाने की बजाय बंजारों के साथ रहकर पशु चराने का काम दिलवा दिया। चंदू खेड़ब्रह्मा से बंजारों के साथ रोज 30-40 पशु चराने के लिए लेकर जाता। उसके रहने व खाने की व्यवस्था बंजारों के साथ ही थी। कहीं भी खाली पड़े खेतों में डेरा डालकर बंजारे अपना बसेरा बसा लेते। स्वभाव अनुरूप एक जगह रुकने की बजाय वे गांव-गांव, शहर-शहर घूमकर पशुओं को चराते। इस कार्य के बदले चंदू को 30 रुपए मासिक पगार के मिलते। कभी-कभार, चंदू के पिता उसे देखने गांव से खेड़ब्रह्मा आ जाते। चार साल तक चंदू ने 30 रुपए की मासिक पगार पर ही काम किया और इस दौरान जो भी पैसा मिला उसे जमा करके, 900 रुपए में वहीं से दो बैल खरीदकर गांव ले आया।

पर चंदू की इच्छा कुछ नया काम सीखने की थी इसलिए उसने पशुओं को चराने का काम छोड़ दिया। किसी नए काम की खोज के दौरान चंदू खेड़ब्रह्मा तहसील के

लाम्बड़िया गांव के अपने एक परिचित के संपर्क में आया, जो खेड़ब्रह्मा में एक रेस्त्रां में खाना बनाने का काम करता था। चंदू भी उसी रेस्त्रां में खाना बनाने के काम में लग गया। यहां चंदू को खाना बनाना सीखने में लगभग 15 दिन लगे। उसे इस काम

19-

के लिए 40 रुपए महीने पगार मिलती। रहने व खाने की व्यवस्था रेस्त्रां पर ही थी। इसी प्रकार चार और साल बीते और चंदू को फिर कुछ नया काम सीखने-करने की इच्छा हुई और उसने रेस्त्रां का काम छोड़ दिया। इसके पीछे एक कारण यह भी था कि रेस्त्रां में काम करते हुए चार वर्षों में चंदू की पगार 40 रुपए से आगे नहीं बढ़ पाई थी।

उस रेस्त्रां पर खेड़ब्रह्मा के फल व्यवसायी महादेव भाई खाना खाने आते थे। उनसे चंदू का संपर्क हुआ और चंदू भी महादेव भाई के फल व्यवसाय से जुड़ गया। महादेव भाई के पास फलों के दो ठेले थे जिनमें से एक पर चंदू को काम मिल गया। कुछ दिन तो चंदू ने काम की बारीकियां सीखीं और फिर वह किसी पेशेवर फेरी वाले की तरह फल बेचने लगा। ठेले पर माल महादेव भाई का होता, और चंदू को दिनभर की मजदूरी के बदले 80 रुपए मिलते। चंदू ने इस प्रकार महादेव भाई के साथ लगातार चार साल काम किया। इन चार सालों में उसे 80 रुपए ही प्रतिदिन मिलते रहे। इस काम के बारे में चंदू कहता है, “मेरे लिए यह काम नया था, लेकिन मैंने पूरी लगन व मेहनत के साथ काम सीखा व किया। शुरुआत में फल बेचते समय परेशानी भी हुई। कभी-कभी माल कम बिकता तो महादेव भाई से डांट भी सुननी पड़ती।”

पर अंततः चार साल महादेव भाई के साथ काम करते हुए चंदू को फल व्यवसाय के बारे में अच्छी खासी जानकारी हो गई। खेड़ब्रह्मा में अन्य व्यापारियों व लोगों से भी उसका अच्छा व्यवहार बन गया। तब चंदू को लगा कि क्यों न मैं भी अपना स्वयं का ठेला लगाऊं। यही सोचकर चंदू ने 300 रुपए किराए से ठेला लिया और फल व्यापारियों से माल खरीद कर खेड़ब्रह्मा के बाजार व गली-मोहल्लों में फेरी लगाकर फल बेचने लगा। वह प्रतिदिन 600-700 रुपए तक का माल लेता। सब खर्चा निकालकर उसके पास दिन भर में 150-200 रुपए बच जाते। यद्यपि कभी-कभी माल खराब होने पर उसे नुकसान भी उठाना पड़ता, लेकिन इसके बावजूद काम ठीक-ठाक चल निकला। चंदू को प्रतिदिन फल व्यवसाय से अच्छी आमदनी हो जाती, अतः दो साल के पश्चात् चंदू ने किराए के ठेले की बजाय दो हजार रुपए निवेश कर स्वयं का ठेला बनवाया, और अगले पांच साल तक वह यूं ही लगातार अपना ठेला लगाता रहा।

दुर्भाग्य से, गली-गली भारी ठेला खींचकर ले जाने के कारण चंदू को दमा व श्वास की शिकायत रहने लगी। वह अक्सर बीमार रहने लगा अंततः उसे अपना काम छोड़, घर बैठकर छह माह तक इलाज करवाना पड़ा। चंदू कहता है, “उस वक्त मेरा काम अच्छा चल रहा था लेकिन बीमार होने से घर बैठना पड़ा। पर घर पर खाली बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता। इच्छा होती कि जल्द से जल्द ठीक होकर अपने काम पर वापस लग जाऊं।”

चंदू की यह इच्छा जल्द ही पूरी हुई। तबीयत में सुधार आते ही वह फिर से काम करने खेड़ब्रह्मा चल पड़ा। पर इस बार परिस्थितियां कुछ अलग थीं, खुद का ठेला लगाने वाले चंदू को मजबूरीवश दूसरे के ठेले पर काम करना पड़ा। इस बारे में चंदू ने बताया, “अगर मैं फिर से अपना ठेला लगता तो मुझे फेरी लगाकर फल बेचने पड़ते। स्वास्थ्य ठीक नहीं होने की वजह से मैं ठेला चलाने में असमर्थ था। यदि ठेला एक जगह ही खड़ा रखता तो उसमें खास आमदनी नहीं होती। इसीलिए स्वास्थ्य को देखते हुए स्वयं का ठेला लगाने की बजाय किसी दूसरे के ठेले पर बैठकर काम करना मुनासिब समझा।” इस बार चंदू का संपर्क हुआ खेड़ब्रह्मा के ही फल व्यवसायी सेठ भैर प्रजापत से, जिसके ठेले पर बैठकर, चंदू फल बेचने लगा। आज पिछले डेढ़ साल से चंदू खेड़ब्रह्मा बस अड्डे के सामने उस ठेले पर बैठ रहा है। चंदू को इस काम के लिए 50 रुपए प्रतिदिन मजदूरी मिलती है। उसके रहने व खाने का खर्चा सेठ ही उठाते हैं। चंदू ने अपना ठेला अपने छोटे भाई को दे रखा है जो खेड़ब्रह्मा में ही फेरी लगाकर उस पर फल बेचता है।

आज भले ही चंदू अपना ठेला लगाने की बजाय किसी दूसरे का ठेला लगा रहा है फिर भी वह अपने कार्य से संतुष्ट है, और अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाने में सक्षम है। चंदू के माता-पिता उसके बड़े भाई के पास रहते हैं, जो गांव में ही खेती करता है। चंदू की तीन संतानें हैं जिनमें सबसे बड़ी लड़की का मानसिक संतुलन ठीक नहीं रहने के कारण वह स्कूल नहीं जा पाती। दूसरी संतान लड़का है जो फिलहाल तीसरी कक्षा में पढ़ता है। सबसे छोटे लड़के को भी स्कूल भेजने की तैयारी में है। अपने बच्चों की उचित शिक्षा व बेहतर परवरिश के बारे में चंदू कहता है, “भाईसाहब, चाहे किसी भी तरह की मजदूरी क्यों ना करनी पड़े, लेकिन बच्चों को जरूर पढ़ाऊंगा।” बड़ी लड़की के मानसिक संतुलन की बीमारी को लेकर चंदू अक्सर चिंतित रहता है। इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि लड़की के साथ-साथ चंदू की पत्नी को भी कभी-कभार मानसिक बीमारी के दौर आते हैं।

20-

चंदू ने दोनों मां-बेटी का कई बार इलाज करवाया, लेकिन कोई खास फर्क नहीं पड़ा। कठिन पारिवारिक परिस्थितियों के बीच भी चंदूलाल अपना हौसला बनाए हुए है, उस पर परिवार की जिम्मेदारी है। इसी जिम्मेदारी के चलते चंदू रोज शाम को खेड़ब्रह्मा से अपने परिवार के पास वापस गांव आ जाता है, और प्रत्येक सप्ताह की केवल दो रातों ही खेड़ब्रह्मा में बिताता है।

चंदू ने खेड़ब्रह्मा में प्रवास करके पैसा कमाया, जिससे उसके जीवन में भी काफी बदलाव आया। अपनी प्रवास से हुई कमाई से ही उसने पिछले 10 वर्षों से गांव में गिरवी पड़ी अपनी जमीन मकान बनवाया, और छुड़वाई, गांव में एक पक्का अपने छोटे भाई को खेड़ब्रह्मा में मदद की। चंदू ने न केवल बहनों की शादी भी की। खेती के लिए वह दो बैल खरीदकर गया। चंदू ने बताया, “अगर मेरा बड़ा भाई बचपन में ही मुझे खेड़ब्रह्मा न लाता तो शायद मैं गांव में या तो पशु चराता रहता या फिर खेती के काम में लग जाता।”

पिछले दस वर्षों में खेड़ब्रह्मा में भी चंदू के मान-सम्मान व इज्जत में बढ़ोतरी हुई। चंदू के पहले सेठ महादेव भाई कहते हैं, “चंदू जब मेरे पास से काम छोड़कर गया, तब मुझे काफी दुख हुआ। मैं ऐसे ईमानदार व मेहनती कार्यकर्ता को छोड़ना नहीं चाहता था। पर आज मुझे खुशी है कि उसने अलग रहकर अपना काम जमाया।” चंदू के वर्तमान ठेले के पास में ही ठेला लगाने वाले हरीश भाई ने भी चंदू के मिलनसार व्यवहार की बहुत तारीफ की।

चंदूलाल कुछ दिनों के अंदर फिर से अपना स्वयं का ठेला लगाने का मानस बना रहा है। चंदू कहता है, “भाईसाहब बीमारी की वजह से दूसरे के यहां काम करना पड़ा लेकिन अब ज्यादा दिन नहीं करूंगा। दिनभर की मेहनत के बदले मिलते हैं तो सिर्फ 50 रुपए। माल न बिकने पर सेठ की डांट-फटकार सो अलग। इससे मेरे मन को बहुत ठेस पहुंचती है।”

फल व्यवसाय से जुड़ने वाले लोगों के लिए चंदू कहता है, “अगर इस व्यवसाय में सफलता पानी है तो सबसे पहले ग्राहक को अपने ठेले तक आकर्षित करने की कला होनी चाहिए। साथ ही ग्राहकों के साथ अच्छा व्यवहार भी जरूरी है। कार्य के प्रति ईमानदारी होनी चाहिए।”

बचपन में पशु चराने वाले चंदूलाल पारगी को फलों का ठेला लगाने की परख हो चुकी है और इसमें कोई संदेह नहीं कि आज वह सफल प्रवासियों की श्रेणी में खड़ा है।

(22)

पट्टी से पलटी जीवन की गाड़ी

महज दस वर्ष की उम्र में उसने इंदौर शहर में नमकीन व्यवसाय में कदम रखा। शुरुआती आठ माह तो नमकीन पैक करना ही सीखता रहा। पूरी लगन व मेहनत से काम सीखा और आगे बढ़ता गया और लगातार चौदह साल तक नमकीन व्यवसाय से जुड़ा रहा। अपनी मेहनत और लगन की बदौलत उसने पैसा कमाया, पहचान बनाई। अपने परिवार को इंदौर ले जाकर बसाया। बच्चों को वहीं पढ़ाने लगा। तब अचानक, एक हादसे के चलते उसका पूरा परिवार मौत के आगोश में समा गया। हादसे के बाद अपना जमा-जमाया काम छोड़कर उसे गांव आना पड़ा।

27 वर्षीय कालूराम कुमावत रेलमगरा तहसील की सकरावास पंचायत के मोर्रा गांव का रहने वाला है। दो भाइयों में बड़ा। कालूराम के पिता भैरूलाल कुमावत मोर्रा गांव में ही आरा मशीन पर लकड़ियां फाड़ने का काम करते हैं। इस कार्य के बदले उन्हें प्रतिदिन 50 रुपए मजदूरी मिलती है। पिता ने मेहनत-मजदूरी करके कालूराम को पालपोस कर बड़ा किया। बचपन में ही उसकी शादी भी कर दी।

पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई करने के बाद कालूराम ने पढ़ाई छोड़ दी। माता-पिता की तो इच्छा थी कि वह आगे और पढ़े लेकिन स्कूल में मास्टर से अनबन होने के कारण वह स्कूल जाने से कतराने लगा। छह माह तक घर बैठा रहा। उस समय कालूराम की उम्र लगभग 10-11 साल की थी। उसके चाचा जेठमल इंदौर में “जैन सेव भंडार” नमकीन वाले के कारखाने पर काम करते थे। कालूराम को घर पर बैठा हुआ देख जेठमल उसको भी अपने साथ इंदौर ले गए और जैन सेव भंडार के कारखाने में काम पर लगा दिया। नमकीन का यह कारखाना इंदौर नगर निगम के सामने, नेहरू मार्ग पर स्थित था। यहां काम करते हुए अभी दस ही दिन हुए थे कि नन्हें कालूराम को

घर की याद सताने लगी और वह घर आ गया। माता-पिता ने उसे समझाया-बुझाया, जिससे एक रात रुकने के बाद ही कालूराम वापस इंदौर चला गया।

कालूराम फिर से जैन सेव भण्डार के कारखाने में नमकीन पैकिंग करने

22-

(23)

का काम करने लगा। उसके रहने की व्यवस्था तो कारखाने के क्षेत्र में ही होती, पर खाने की व्यवस्था उसे स्वयं करनी पड़ती। कारखाने में ओवरटाइम करते वक्त जरूर उसे मालिक की तरफ से खाना मिलता। कारखाने का समय प्रतिदिन सुबह 8 से शाम 7 बजे तक होता। रविवार का अवकाश रहता था। कालूराम को लगभग 8 माह तक तो नमकीन के पैकिंग का काम सीखने में ही लग गए। उसने पैकिंग का कार्य लगभग चार साल तक किया, जिस दौरान उसे महीने की 500 रुपए पगार स्वरूप मिलते रहे।

इस अवधि में कालूराम नमकीन बनाने का काम भी सीख गया था। उसे नमकीन की अलग-अलग किस्मों की जानकारी हो गई थी। साथ ही वह मेहनती एवं अपने कार्य के प्रति ईमानदार भी था। कारखाने के मालिक की नजर कालूराम पर पड़ी और उसने कालूराम को कारखाने पर मुनीम बना दिया गया। मुनीम के तौर पर कालूराम को न केवल पूरे कारखाने की जिम्मेदारी निभानी पड़ती, बल्कि नमकीन बनाने के वक्त कारीगरों को नमकीन की किस्म (वैरायटी) के बारे में भी जानकारी देनी होती। नमकीन

23-

बनाते वक्त मसालों की मात्रा, बेसन, तेल आदि के बारे में बताना होता। कभी-कभार कालूराम स्वयं भी नमकीन बनाता था। अब उसकी पगार में भी काफी बढ़ोतरी हुई और उसे 2500 रुपए मासिक रूप से मिलने लगे। मुनीम का कार्य सुबह 6 से 11 बजे तक होता। अतः

कालूराम के पास सुबह 11 बजे के बाद कोई काम नहीं होता। कालूराम ने इस बचे हुए समय का सदुपयोग करने की सोची।

इंदौर के मालगंज चौराहे पर "श्री नमकीन" का भी कारखाना था। कालूराम नजर बचा खाली समय में यहां भी नमकीन बनाने का कार्य करने लगा। रोज दो बोरी बेसन की नमकीन निकालकर आता। बेसन की एक बोरी 75 किलो की होती। कालूराम यहां शाम 4 बजे से रात 9 बजे तक काम करता। यहां से कालूराम को 2200 रुपए मासिक पगार मिलने लगी। इस काम की जानकारी "जैन सेव भंडार" के मालिक को भी नहीं थी, हालांकि 'श्री नमकीन' का मालिक जानता था कि कालूराम जैन सेव भंडार के यहां भी काम करता है।

इस प्रकार दोनों तरफ तालमेल बैठाकर वह काम करने लगा और महीने के 4700 रुपए कमाने लगा। लगातार 6 साल तक यही सिलसिला चलता रहा। आखिरकार 6 साल बाद 'जैन सेव भंडार' के मालिक को कालूराम के इस तरह के काम करने के बारे में पता चल ही गया। अब मालिक को यह डर सताने लगा कि कहीं कालूराम

यहां की नमकीन वैरायटी 'श्री नमकीन' वाले के यहां न बनाने लग जाए। इसलिए उन्होंने कालूराम को 'श्री नमकीन' के यहां से काम छोड़ने के लिए कहा। कालूराम ने भी पगार बढ़ाने की शर्त रख दी। जैन सेव भंडार के मालिक ने कालूराम की शर्त मान ली और उसकी पगार एक ही झटके में 8 हजार रुपया महीना कर दी। पगार बढ़ते ही कालूराम ने 'श्री नमकीन' वाले के यहां से काम छोड़ दिया।

कालूराम की पगार जरूर बढ़ी, लेकिन मालिक ने उसे फ़ैक्ट्री के अलावा दुकान पर भी बैठने को कहा। वह सुबह 6 से 11 बजे तक कारखाने पर मुनीम का कार्य करता तो 11 बजे बाद 'जैन सेव भंडार' की दुकान पर भी जाकर बैठता। अपने चाचा के लड़के को भी अपने साथ इंदौर ले जाकर कालूराम ने काम पर लगा दिया। अपनी अच्छी स्थिति देखते हुए कालूराम गांव से अपनी पत्नी जमकू सात वर्षीय लड़की सपना, व 8 माह के लड़के नरेश को भी इंदौर ले गया। परिवार को इंदौर ले आने के कारण राजनगर कॉलोनी में उसने 700 रुपए महीने से किराए का कमरा ले लिया। कालूराम का पूरा परिवार व उसका चचेरा भाई इसी कमरे में रहने लगे।

कालूराम ने अपनी लड़की सपना को इंदौर के एक स्कूल में दाखिला दिलवा दिया। पूरा परिवार हंसी-खुशी अपना जीवन बिताने लगा। कालूराम व उसका चचेरा भाई सुबह 6 बजे खाने का टिफिन लेकर निकल जाते और लड़की स्कूल। दिनभर उसकी पत्नी घर पर अकेली रहती जिससे

24-

उसके लिए समय काटना मुश्किल हो जाता। कालूराम ने अपनी पत्नी को भी कोई कामकाज करवाने का मानस बनाया। वह इंदौर के सर्राफा बाजार से चांदी की पायजेब लाता और उन पायजेबों पर घुंघरू लगाने का काम करती जमकू। एक जोड़ी पायजेब को तैयार करने के बदले उसे 35 रुपए मिलते। इस काम से न केवल जमकू का समय कटने लगा बल्कि अलग से आमदनी भी होने लगी।

कालूराम ने अपने इस आशियाने को कई सुविधाओं से संजोया। दैनिक जीवन में काम आने वाली सभी सामग्री एवं मनोरंजन के साधन जैसे-टी.वी., वीसीडी, गैस स्टोव, बर्तन, आदि कालूराम के घर में मौजूद थे। लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। एक दिन रोज की तरह कालूराम व उसका भाई सुबह 6 बजे कारखाने पर चले गए। कमरे पर उसकी पत्नी व बच्चे थे। कालूराम कारखाने में पहुंच चुका था जब किसी काम के लिए वह पास ही में स्थित एक दुकान पर गया। वहां टी.वी. पर खबर प्रसारित हो रही थी कि इंदौर के राजनगर कॉलोनी में एक मकान के अंदर गैस सिलेण्डर फटने से आग लग गई है। यह खबर देखते ही कालूराम के पैरों तले जमीन

खिसक गई क्योंकि यह हादसा उसी के मकान में हुआ था। इस हादसे का शिकार उसका परिवार ही हुआ था। बदहवास कालूराम अपने भाई के साथ दौड़ा-दौड़ा कमरे पर पहुंचा लेकिन उसके वहां पहुंचने से पहले ही उसकी पत्नी व एक बच्चा मौत की नींद सो चुके थे। उसकी लड़की सपना को जरूर थोड़ा-बहुत होश था जिसने मरने

25-

से पहले गैस सिलेण्डर फटने की बात कही। कालूराम का हंसता-खेलता संसार उजड़ गया।

इस हादसे के बाद कालूराम ने न केवल इंदौर छोड़ दिया बल्कि नमकीन व्यवसाय से भी नाता तोड़ लिया। चार साल पहले अपना बचा हुआ सामान समेटकर, एवं अपने

बिछड़े परिवार की यादों को साथ लेकर, वह अपने गांव मोर्रा आ गया। गांव आकर भी कालूराम को राहत नहीं मिली। उसके ससुराल वालों ने जमकू को जान से मारने का दोषी मानते हुए कालूराम पर मुकदमा कर दिया। मुकदमा लड़ने के लिए कालूराम ने अपनी सारी जमा पूंजी खर्च कर दी और आखिरकार, सबूतों के अभाव में तथा फौव्द्री मालिक व अंतिम समय में कालूराम की लड़की सपना द्वारा दिए गए बयानों के आधार पर अदालत ने कालूराम को सभी आरोपों से बरी कर दिया।

गांव लौट कर कालूराम दो महीने तक घर पर ही बैठा रहा। कुछ दिन रेलमगरा में अपने मामा की नमकीन की दुकान पर बैठा, लेकिन उसका मन नहीं लगा। उसको रह-रहकर अपने परिवार की याद सताती। एक साल तक सिलसिला यूं ही चलता रहा जिसके बाद उसके मामा भैरू लाल ने कालूराम को रेलमगरा में चाय की एक दुकान खोलकर दी। दुकान का सारा खर्चा मामा ने ही उठाया ताकि कालूराम का मन लगा रहे। इस दुकान पर कालूराम व उसका छोटा भाई गणेश बैठते हैं। सभी खर्चा निकालकर इस दुकान से कालूराम के पास रोज के 100 रुपए बच जाते हैं।

पिछले एक साल से कालूराम इसी चाय की दुकान पर बैठ रहा है। अपने पूरे परिवार, रिश्तेदारों के सहयोग के बावजूद भी कालूराम नमकीन का कार्य दुबारा नहीं करना चाहता, भले ही उसे रेलमगरा में छोटी सी चाय की दुकान पर ही क्यों न बैठा रहना पड़े। कालूराम कहता है, “अगर मैं नमकीन का कार्य करने इंदौर नहीं जाता तो शायद मेरा परिवार भी मेरे साथ नहीं जाता। नमकीन व्यवसाय ने पैसा खूब दिया, लेकिन परिवार छिन लिया। जो कमाया वह इंदौर मुकदमे में ही खर्च कर दिया। खाली हाथ इंदौर गया था और वहां से खाली हाथ ही लौटा हूं।”

कालूराम इस व्यवसाय में आने वाले लोगों को चेताते हुए कहता है, “इस काम में सुबह जल्दी उठ कर काम से लगना पड़ता है। भट्टियों से निकलने वाली आग, उबलते तेल

आदि से शरीर को नुकसान हो जाता है। हाथ-पैरों में ऐंठन आ जाती है। इसलिए एक कारीगर को दस साल से ज्यादा इस प्रकार का काम नहीं करना चाहिए।” कालूराम आगे कहता है, “इंदौर के व्यापारी राजस्थान के लोगों को तोड़ने में लगे रहते हैं। वहां लोगों को बातों में उलझा कर ले जाते हैं। इसलिए पक्का भरोसा हो तो ही किसी दूसरे के साथ जुड़ें।” कालूराम के चाचा लालचंद कुमावत ने नमकीन व्यवसाय व कार्य के बारे में बताया, “नमकीन कार्य में कारीगर बनने का शौक जरूर करें लेकिन कारीगर बनकर ना रहें। हमारे परिवार में नमकीन कार्य में चार लोग हैं लेकिन किसी ने भी तीन साल से अधिक काम नहीं किया। इस काम में स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचने का खतरा अधिक रहता है। मैंने भी डेढ़ साल के बाद ही शरीर के नुकसान को देखते हुए ही नमकीन का कार्य करना छोड़ दिया।”

पूरे मोर्रा गांव में लगभग 40 लोग नमकीन कार्य में अलग-अलग जगहों पर रहकर काम कर रहे हैं। ये सभी कुमावत समाज के हैं। इनमें चार लोग तो अकेले कालूराम के परिवार से ही हैं। इनमें कालूराम के 44 वर्षीय चाचा बिरदीचंद भी हैं जो कभी इंदौर में रहकर नमकीन बनाने का कार्य करके आ चुके हैं। नमकीन कार्य व कालूराम के बारे में बिरदीचंद कहते हैं, “कालूराम गांव में रहता तो कुछ नहीं कर पाता। इंदौर जाकर काम सीखा व पैसा कमाया लेकिन हादसे से उसका सब कुछ छिन गया। हम कालूराम को फिर से काम करने के बारे में कहते हैं। हमारा पूरा परिवार इसके साथ है। अगर कालूराम चाहे तो उसकी दूसरी शादी भी करवा दें।” बिरदीचंद नमकीन कार्य के बारे में कहते हैं, “मैंने भी दो साल इंदौर में नमकीन बनाने का काम किया था

लेकिन पूरा शरीर कमजोर पड़ने लगा। इसलिए वहां से काम छोड़कर गांव में शादी ब्याह में हलवाई का काम करने चला जाता हूं। भविष्य में नमकीन व्यवसाय में हम अपने परिवार से किसी को भी नहीं भेजेंगे।”

फिलहाल कालूराम अपने मन के कष्ट से उबरकर एक नए जीवन,

एक नई राह की तलाश में लगा है। कभी-कभार कुछ काम करता है, तो कभी सिर्फ फिकर। पर इसमें दो राय नहीं कि नमकीन व्यवसाय ने कालूराम को काफी सफलता दिलाई। इसी व्यवसाय की आमद से कालूराम ने गांव में अपना मकान बनाया, छोटे भाई व अपने दो चाचा को इंदौर ले जाकर काम सिखाया। कालूराम एक सफल प्रवासी की श्रेणी में था।

दौड़ रही है गाड़ी

भैरुसिंह से मिलने के लिए हमें तीन बार समय लेना पड़ा। जब भी भैरुसिंह से मिलने की कोशिश करते, पता चलता कि गाड़ी की बुकिंग होने के कारण वह गाड़ी लेकर निकल चुका है। आखिरकार हमने उससे सुबह-सुबह मिलने का फैसला किया। इस बार भैरुसिंह घर से गाड़ी लेकर रेलमगरा आ गया। हमारे विशेष अनुरोध के चलते वह बातचीत करने के लिए मोर्रा गांव चलने को तैयार हो गया।

रेलमगरा से चार किलोमीटर दूरी पर स्थित सकरावास पंचायत का मोर्रा गांव और गांव के हनुमान चौक में भैरुसिंह का मकान है। यह मकान भैरुसिंह व उसके बड़े भाई किशन सिंह दोनों का है। घर पहुंचने पर भैरुसिंह ने बरामदे में चारपाई लगाकर दरी बिछा दी और बैठने का आग्रह किया। भैरुसिंह चारपाई पर बैठने की बजाय हमारे सामने दरी बिछाकर बैठ गया। उससे बातचीत का सिलसिला शुरू करने वाले ही थे कि घर में उसकी माताजी ज्ञानीबाई का प्रवेश हुआ। घर में प्रवेश करते ही माताजी थोड़ी क्रोधित होते हुए बोली, “कुण हैं, काई पूछे हैं, काई लिखे हैं ? जमानो बहुत खराब है।” अपनी माताजी के गुस्से से भैरुसिंह भी कुछ सकते में आ गया। बोला, “संस्था वाले हैं, कार्ड बनाने आए हैं।” पर माताजी अड़ी रहीं। उनकी शंकाएं जो थीं। हमने उनको पास बैठाकर बातचीत करने का उद्देश्य बताया। तब जाकर माताजी शांत हुईं और हमारे पास आकर बैठकर अपने बेटे भैरुसिंह के बारे में जानकारी देने लगीं। पता चला कि भैरुसिंह के पिता चमनसिंह का एक साल पहले बीमारी के कारण निधन हो गया। चमनसिंह दरीबा में खनन का काम करते थे। भैरुसिंह के बड़े भाई किशनसिंह रेलमगरा में ड्राइवरी करते हैं। भैरुसिंह की पत्नी गृहणी है तथा उनकी डेढ़ साल की एक लड़की है। यही है भैरुसिंह का परिवार।

सातवीं कक्षा पास करने के बाद ही भैरुसिंह का मन पढ़ाई से उचट गया। पढ़ाई छोड़ने के साथ ही कोई कामकाज करने की इच्छा हुई। उस समय मोर्रा गांव से काफी लोग स्टील पॉलिशिंग का काम करने अहमदाबाद जाते थे। भैरुसिंह मोर्रा गांव के अपने परिचित शंकरलाल कुमावत के संपर्क में

27-

आया। शंकर लाल भी अहमदाबाद में स्टील पॉलिशिंग का काम करता था। भैरुसिंह किराए के लिए 200 रुपए उधार लेकर शंकरलाल के साथ अहमदाबाद जा पहुंचा। अहमदाबाद में ओड़व रोड स्थित आदिनाथ नगर में स्टील पॉलिशिंग का एक कारखाना था, जहां भैरुसिंह को काम मिल गया। भैरुसिंह स्टील के बर्तनों पर पॉलिश करता और उन्हें कपड़े से साफ भी करता। बर्तन बनाने वाले कारीगर अलग थे, तैयार बर्तनों पर पॉलिश भैरुसिंह करता। इस काम के लिए उसे 800 रुपए मासिक पगार मिलती। रहने व खाने की व्यवस्था भैरुसिंह को अलग से स्वयं ही करनी पड़ी। उसको स्टील पॉलिश कारखाने में सुबह 8 से दोपहर 12 बजे तक काम करना होता। भैरुसिंह एक साल तक हैल्पर बना रहा जिससे उसकी पगार 800 रुपए से ज्यादा नहीं बढ़ी।

सालभर बाद भैरुसिंह भी कारीगर बन गया। कारीगर का काम न केवल स्टील के बर्तन बनाना होता बल्कि तैयार नग पर स्टील पॉलिश चढ़ाना, पाउडर लगाकर साफ करना व कंपनी के ब्रांड का स्टिकर लगाना भी होता था। इस तरह स्टील के बर्तन का पूरा नग भैरुसिंह के हाथों तैयार होता। भैरुसिंह अब कारीगर हो गया था इसलिए उसकी पगार भी बढ़कर 1500 रुपए मासिक कर दी गई।

28-

भैरुसिंह ने लगातार तीन साल तक काम करने के बाद स्टील पॉलिश का काम छोड़ने का मन बनाया। इस बारे में भैरुसिंह कहता है, “पैसा कमाने व एक-दो साल तक रुककर काम करने की वजह से स्टील पॉलिश का काम पकड़ कर रखा, लेकिन जब स्वास्थ्य खराब होने लगा तो काम छोड़ना ठीक समझा। स्टील पॉलिश का काम करने से गले में काला कफ सा जमने लगा था। यहां कमजोर व्यक्तियों के लिए कोई जगह नहीं थी। इसलिए तीन साल बाद ही मैंने स्टील पॉलिश का काम छोड़ दिया।” इन तीन सालों में भैरुसिंह ने अहमदाबाद में रहकर लगभग 20 हजार रुपए जमा किए। उसने अपनी जमा-पूंजी घर लाकर पिता को सौंप दी जिससे पिता ने घर का कर्जा चुका दिया।

अहमदाबाद से लौटने पर भैरुसिंह कुछ दिन घर पर ही बैठा रहा। उन दिनों भैरुसिंह के माता-पिता कुरज गांव स्थित बनास नदी में ट्रक-ट्रोलें में मिट्टी भरने के काम पर जाते थे। भैरुसिंह भी अपने माता-पिता के साथ मिट्टी भरने के काम पर जाने लगा। एक ट्रोलें में मिट्टी भरने के लिए 20 मजदूर होते थे। मिट्टी भरने के लिए एक व्यक्ति को 10 रुपए मिलते थे। सभी मजदूर मिलकर दिनभर में चार-पांच ट्रोलें मिट्टी के भरते। इससे भैरुसिंह के पूरे परिवार के पास दिनभर में 100-150 रुपए तक की आमदनी हो जाती थी। लगभग पांच माह तक भैरुसिंह यूं ही अपने परिवार

के साथ मिट्टी भरने का काम करता रहा। मजदूरी के पैसे वह अपने माता-पिता को दे देता।

पांच माह बाद भैरुसिंह अपने पड़ोसी करणीदान के साथ मिलकर काम करने लगा। करणीदान के पास स्वयं का ट्रैक्टर था। भैरुसिंह इस ट्रैक्टर पर खलासी का काम

29-

करने के साथ मिट्टी, बजरी, पत्थर आदि सामग्री भरकर लाने का काम करने लगा। इस काम के बदले भैरुसिंह को 40 रुपए दैनिक मजदूरी मिलती। महीने भर कुछ ना कुछ काम आता रहता जिससे भैरुसिंह की मासिक पगार 1200 रुपए तक

हो जाती थी। ट्रैक्टर पर खलासी का काम करते-करते वह धीरे-धीरे ट्रैक्टर चलाना भी सीखने लगा और छह महीने में ट्रैक्टर चलाने में कुशल हो गया।

पर नया सीखने की ललक थी। इच्छा हुई कि ट्रक चलाना भी सीख ले। वह एक परिचित झाइवर बाबू खां के साथ गंगापुर सहाड़ा गया, जहां ट्रक पर उसने खलासी का काम शुरू किया। महीने के 1600 रुपए मिलने लगे। डेढ़ साल के भीतर वह खलासी का काम करते-करते ट्रक चलाना भी सीख गया और ट्रक झाइवर बन गया। रात के समय ट्रक बाबू खां चलाता तो दिन के समय भैरुसिंह। ट्रक पर माल लादकर दिल्ली, मुम्बई, सूरत, अहमदाबाद जैसे बड़े-बड़े शहरों में जाता। भैरुसिंह महीने में एक-दो बार घर आता। घर आने पर ही वह पैसा लेकर आता। दो साल तक ट्रक पर काम करने के बाद भैरुसिंह ने काम छोड़ दिया। भैरुसिंह कहता है, "मैं ट्रक को लेकर काफी दूर जाता था। इतनी दूर-दूर तक गाड़ी लेकर जाना परिवारजनों को पसंद नहीं आता। माता-पिता को डर लगता था। परिवार वालों ने कहा कि अगर झाइवरी ही करनी है तो घर पर रहकर ही करो। इसलिए मैंने दो साल बाद ट्रक झाइवरी का काम छोड़ दिया।"

ट्रक झाइवरी का काम छोड़कर भैरुसिंह रेलमगरा आ गया, जहां वह अपने परिचित लादू सामर के पास काम करने लगा। लादू सामर के पास मार्शल गाड़ी थी जिसे भैरुसिंह चलाने लगा। भैरुसिंह को इस काम के लिए हर महीने ढाई हजार रुपए पगार मिलती। जहां से भी बुकिंग आती, भैरुसिंह गाड़ी वहीं लेकर चला जाता। राजस्थान के अलावा वह अन्य राज्यों में भी जाता। भैरुसिंह ने मार्शल गाड़ी पर चार साल तक झाइवर का काम किया, पर इस अवधि में उसका वेतन ढाई हजार रुपए के आगे नहीं बढ़ा।

इसी दौरान, भैरुसिंह व बड़े भाई किशन सिंह ने मिलकर एक ट्रैक्टर खरीदा। यह ट्रैक्टर उन्होंने ढाई लाख रुपए में खरीदा था। एक लाख रुपए दोनों भाइयों के पास

थे जबकि बाकी पैसा दोनों ने कर्जे के रूप में लिया। ट्रैक्टर चलाने के लिए उन्हें एक झाइवर की आवश्यकता थी। इसलिए भैरुसिंह ने मार्शल गाड़ी पर झाइवरी का काम छोड़ दिया और वह अपने स्वयं के ट्रैक्टर पर ही झाइवरी का काम करने लगा। ट्रैक्टर खरीदने के चार-पांच माह के बाद ही उन्होंने उसे दो लाख रुपए में बेच दिया। "हमारी तरक्की से आस-पड़ोस के लोग जलते थे कि इन लोगों ने ट्रैक्टर कैसे खरीद लिया। ईर्ष्या के मारे एक दिन कुछ लोगों ने रात के समय ट्रैक्टर के इंजन में चीनी डाल दी जिससे इंजन खराब हो गया और हमें मजबूरीवश ट्रैक्टर को बेचना पड़ा।"

ट्रैक्टर बेचने के बाद भैरुसिंह रेलमगरा में ही शराब के एक गोदाम की गाड़ी पर झाइवरी का काम करने लगा। भैरुसिंह गाड़ी में शराब के कार्टन भरकर आसपास के गांवों में स्थित शराब की दुकानों पर सप्लाई करने जाता। इस काम के बदले भैरुसिंह को हर महीने ढाई हजार रुपए पगार स्वरूप मिलते। उसने इस प्रकार पांच साल तक काम किया। इस दौरान, गोदाम के मालिक ने अपने निजी कार्यों के लिए मारुती वैन खरीदी और भैरुसिंह को उस पर झाइवर रख लिया। यह काम करते पांच ही माह हुए थे कि एक दिन गाड़ी के सामने अचानक नील गाय आ जाने के कारण गाड़ी पलट गई। इस दुर्घटना में भैरुसिंह को भी चोट लगी और भैरुसिंह दो माह तक घर पर बैठा रहा। पैर में लगी चोट ठीक होने के बाद भैरुसिंह मारुती वैन की झाइवरी का काम करने वापस गया ही नहीं।

दो माह बाद भैरुसिंह ने अपने दोस्त लहरूलाल के साथ साझे में एक गाड़ी खरीदने का फैसला किया। दोनों दोस्तों ने निर्णय करते हुए ढाई लाख रुपए में महिन्द्रा पिकअप गाड़ी खरीद ली। भैरुसिंह व लहरूलाल दोनों ने 50-50 हजार रुपए नगद व बाकी पैसा ऋण के रूप में लिया।

फिलहाल, पिछले सात माह से भैरुसिंह स्वयं की ही यह गाड़ी चला रहा है। महीने में करीब 15 दिन गाड़ी बुकिंग पर चली जाती है। भैरुसिंह उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा इलाकों में ही बुकिंग लेता है। इस गाड़ी से जो कमाई होती है, उसे दोनों साझेदार मिलकर बांट

30-

लेते हैं। भैरुसिंह व लहरूलाल को महीने से 8 हजार रुपए ऋण किस्त के भी चुकाने पड़ रहे हैं। महीने भर में पूरा खर्चा निकालकर भैरुसिंह के हिस्से में 4-5 हजार रुपए बच जाते हैं। गाड़ी की बुकिंग लेने के अलावा भैरुसिंह, लहरूलाल के साथ मिलकर अनाज का भी व्यापार करने लगा है। दोनों रेलमगरा के आस-पास स्थित गांवों से अनाज की बोरियां खरीदकर लाते हैं और कांकरोली, फतेहनगर की अनाज मण्डियों में बेचते हैं। इस काम के लिए भैरुसिंह स्वयं

अपनी गाड़ी का ही इस्तेमाल करता है। पूरा खर्चा निकालने के बाद अनाज की एक बोरी पर उनके पास 60-70 रुपए बचते हैं।

भैरूसिंह ने गांव से पलायन करके प्रवास में ही ट्रक चलाना सीखा। भैरूसिंह कहता है, “गांव से बाहर जाकर गाड़ी चलाना सीखा। देशभर के इलाकों में घूमा जिससे लोगों से जान पहचान व व्यवहार बना। बाहर जाकर सीखा कि किस तरह लोग गाड़ी खरीदकर उसे व्यापार में लगाकर पैसा कमाते हैं। गाड़ी का इस्तेमाल करने की सीख मिली। आज मैंने रेलमगारा में अपनी ही गाड़ी को धंधे में लगाकर अनाज बेचने का धंधा शुरू किया है।”

31-

पर भैरूसिंह की माताजी ज्ञानी बाई कहती हैं, “भैरू जो काम करता है उसमें खतरा है। गाड़ी लेकर जाता है तो डर लगता है, लेकिन अब और कोई दूसरा काम भी तो नहीं कर सकता। ड्राइवरी का ही काम जो पकड़ लिया है।” अपने

घर-परिवार की स्थिति के बारे में ज्ञानी बाई आगे कहती हैं, “भैरू बाहर जाकर कमाने लगा तो घर की स्थिति में भी सुधार आया। इसके पिताजी ने मकान बनवाने के वक्त कर्जा लिया था। मकान का कर्जा भी भैरू ने ही चुकाया। मोर्रा गांव में एक प्लाट था। इसके पिताजी ने कर्जा लेते वक्त प्लाट गिरवी रखा था जिसे भी भैरू ने छुड़वा लिया है।”

भैरूसिंह ड्राइवर का काम करके अपने परिवार की जिम्मेदारियों को बखूबी निभा रहा है। पिता के निधन के बाद पूरे परिवार की जिम्मेदारी भैरूसिंह के कंधों पर है। भविष्य में भैरूसिंह का स्वयं की एक बड़ी गाड़ी-टाटा 407- लेने का इरादा है। वह कपास खरीदकर गाड़ी से ले जाकर सुमेरपुर मण्डी में बेचेगा। जब से ड्राइवरी के काम में कदम रखा तब से भैरूसिंह लगातार इसी काम को जारी रखे हुए है। घर व गांव से बाहर निकलकर ही भैरूसिंह ने गाड़ी चलाना सीखा, व्यापार को आगे बढ़ाने की समझ उपजी। भैरूसिंह ने ड्राइवरी के काम में मेहनत कर सफल हो यह सिद्ध कर दिया है कि सफलता के गुर सीखने व सफल होने के लिए लम्बा प्रवास जरूरी नहीं।

सही समय पर सही फैसला

मांगीलाल के माता-पिता सन् 1960-61 में राजस्थान के पाली जिले के सोमेसर गांव से अहमदाबाद आकर बस गए और उन्होंने अहमदाबाद में एक चाली (शहर की झुगगी-झोंपड़ी) में किराए पर घर लिया। वहां इनके पिता ने हाथ लॉरी खींचने का काम किया। मांगीलाल का जन्म 4 जनवरी 1967 को अहमदाबाद में ही हुआ। पिता ने अपनी मेहनत-मजदूरी के बल पर ही मांगीलाल की परवरिश की।

मांगीलाल बचपन से ही पढ़ाई में होशियार थे। पर जब वे कक्षा चार में पढ़ रहे थे, तो किसी कारण गुरुजी के हाथ से पिटाई खाने के बाद मांगीलाल का मन स्कूल से हट गया। वे रोज सुबह घर से स्कूल के लिए निकलते पर इधर-उधर घूम-फिरकर अपना समय काटते। स्कूल की छुट्टी होने के समय वे घर लौट आते। यह सिलसिला छह महीने तक लगातार चलता रहा। फिर भी, परीक्षा परिणाम आने पर मांगीलाल 97 प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण हुए। पर मांगीलाल का मन तो पढ़ाई से पहले ही हट चुका था। अपने पिता को अकेले मशक्कत करते देख मांगीलाल की इच्छा भी कुछ काम करने की हुई। उस समय उनकी उम्र महज 13 वर्ष थी।

32-

मांगीलाल की जिद पर उनके पिता ने उन्हें काम के लिए घर के पास एक किराने की दुकान पर लगा दिया। यह बात सन् 1980 की है। मांगीलाल इस दुकान पर हैल्पर के बतौर काम करने लगे। शुरुआत में काम के बदले रोज 50 पैसे मिलते थे। मांगीलाल ने इस दुकान पर लगातार 6 साल तक काम किया। इस अवधि में उन्हें धीरे-धीरे 350 रुपए मासिक पगार मिलने लगी थी। सन् 1984 में मांगीलाल की शादी भी हो गई, जिसके लिए उनके पिता ने लगभग 13 हजार रुपए खर्च किए।

परिवार की बढ़ती जरूरतों और जिम्मेदारियों की दृष्टि से मांगीलाल को किराने की दुकान पर कम ही पैसा मिलता था। इसलिए मांगीलाल ने किराने की दुकान से काम छोड़ दिया और अहमदाबाद में ही एक कपड़ा बनाने के कारखाने में काम करने लगे। यहां कपड़ों की गठरियों की पहचान करके नंबर डालना व उन्हें निश्चित स्थान तक पहुंचवाने का काम मांगीलाल को करना होता। यह काम सुबह 8 बजे से दोपहर 12 बजे तक रहता और इसके बदले मांगीलाल को 240 रुपए मासिक पगार मिलती।

मांगीलाल के पास दोपहर 12 बजे बाद कोई दूसरा काम नहीं होता था। इसलिए वे इस बचे हुए शाम के समय का सदुपयोग करने के लिए उसी कपड़ा कारखाने में दूसरा काम करने लगे। यह काम था रुई के कापड़ की गठरी को कंधे पर रखकर एक जगह से दूसरी जगह पर रखना, जिसके लिए उन्हें 400 रुपए मासिक पगार मिलती। इस तरह से पूरे दिन का उपयोग भी हो जाता और ठीक ठाक आमदनी भी। परन्तु, कापड़ की गठरी को उठाने पर मांगीलाल के कंधों पर काफी जोर पड़ता जिससे वहां पर नीलनुमा निशान पड़ने लगे। बनियान भी फटने लगी। तीन माह बाद ही मांगीलाल ने यह काम छोड़ दिया।

मांगीलाल के परिवार की माली हालत ठीकठाक ही थी। उसके पिता लॉरी खींचने का काम कर रहे थे। पर अचानक वे बीमार पड़े और इलाज में काफी खर्च हुआ। इसी बीच मांगीलाल ने भी कपड़ा बनाने वाले कारखाने का काम छोड़ दिया था। इन मुश्किल परिस्थितियों के बीच एक गुजराती सेठ के लड़के ने मांगीलाल की न केवल आर्थिक रूप से मदद की बल्कि उन्हें एक किराने की दुकान पर काम भी दिलवा दिया। नाकोड़ा रोड स्थित इस दुकान पर मांगीलाल ने तीन साल तक लगातार काम किया। वहां उन्हें 900 रुपए मासिक पगार मिलती। पर, अचानक एक दिन सेठ से कुछ अनबन हो गई। मांगीलाल ने वहां का काम भी छोड़ दिया।

वर्ष 1993 में मांगीलाल को एक राशन की दुकान पर राशन बांटने का काम मिला। यहां उन्हें एक हजार रुपए मासिक मिलने लगे। लगातार 6 साल तक मांगीलाल राशन की दुकान पर रहे। इस दौरान मांगीलाल को राशन डीलरशिप का अच्छा खासा अनुभव हो गया।

सन् 1999 में मांगीलाल को पता चला कि अहमदाबाद के गिरधर नगर में एक राशन की दुकान का लाइसेंस किराए पर मिल रहा है। मतलब यह था कि लाइसेंस किसी अन्य के नाम था पर राशन बांटने की जिम्मेदारी उस व्यक्ति को उठानी थी, जो दुकान लेता। मांगीलाल ने यह मौका हाथ से जाने नहीं दिया और 1500 रुपए किराए से वह दुकान ले ली। वे स्वयं राशन खरीदते। गिरधर नगर इलाके के लोग इस दुकान से पहले ही परिचित थे। इसलिए मांगीलाल को भी राशन बांटने में कोई दिक्कत नहीं हुई। कुछ दिन तक तो वे इस दुकान पर सिर्फ राशन ही बेचते रहे। धीरे-धीरे उन्होंने राशन की दुकान पर किराने का सामान भी रखना शुरू कर दिया। देखते ही देखते यह दुकान किराने के सामान से भर गई।

पिछले आठ वर्षों से मांगीलाल गिरधर नगर स्थित “अशोक प्रोविजन स्टोर” नाम से यह दुकान चला रहे हैं। इस दुकान के अलावा गिरधर नगर में ही दो और राशन की दुकानें हैं जिनका लाइसेंस भी दूसरे लोगों के ही नाम है। इन दोनों दुकानों पर मांगीलाल के छोटे भाई गोकुल व अर्जुन बैठते हैं। समय मिलने पर दोनों भाई अपने बड़े भाई की किराने की दुकान पर भी हाथ बंटाते हैं।

मांगीलाल की इस सफलता के पीछे उसकी स्वयं की मेहनत के अलावा दोनों छोटे भाइयों के सहयोग का हाथ भी है। तीनों भाइयों की एकजुटता का ही नतीजा है कि वे अपना व्यवसाय सफलतापूर्वक कर रहे हैं। मांगीलाल का भाई गोकुल कहता है, “हमने बड़े भाई को पिता का दर्जा दे रखा है। पिता के निधन के बाद भाई ने ही हमें सहारा दिया। हमारे मकान जरूर अलग-अलग हैं, लेकिन कामकाज हम सब मिलकर करते हैं। दुकान पर बड़ा भाई काउंटर पर बैठा रहता है। ग्राहकों को सामान हम दोनों भाई ही देते हैं।”

मांगीलाल का पूरा परिवार आज संपन्न है। अहमदाबाद की भार्गव रोड पर उनका स्वयं का पक्का मकान है। दोनों छोटे भाइयों के लिए भी मांगीलाल ने अलग से मकान बनवा दिए हैं। मांगीलाल के दो लड़के व दो लड़कियां हैं, जिन्हें अच्छी शिक्षा दिलवाने के लिए वे नियमित रूप से स्कूल भेज रहे हैं। उन्होंने अपना और दोनों भाइयों का बीमा भी करवा रखा है और बैंक में भी खाता खुलवा रखा है। हालांकि मांगीलाल अपने दोनों भाइयों की बात भी सुनते हैं और उनके सुझावों पर विचार करते हैं पर परिवार के हित में जो भी फैसले लेने होते हैं, वे मांगीलाल ही लेते हैं।

अपने संघर्ष भरे दिनों के बारे में मांगीलाल कहते हैं, “मैंने अपने पूरे जीवन में काफी संघर्ष किया। संघर्ष के दिनों में मेरे पूरे परिवार ने मेरी मदद की। जिस बस्ती में हम रहते थे, वहां सीवर लाइन का गंदा पानी निकालने के लिए सफाई कर्मचारी 5 रुपए लेता। इस पांच रुपए को बचाने के लिए मैं और मेरी पत्नी रात को एक बजे उठकर स्वयं गंदा पानी निकालकर एक किलोमीटर तक पैदल जाकर डालकर आते। मेरी पत्नी ने मुझे बहुत सहयोग दिया।”

मांगीलाल आज भले ही अहमदाबाद के निवासी हों लेकिन अपने राजस्थान को वे कभी नहीं भूलते। अवसर मिलने पर वे अपने परिवार के साथ साल में 2-3 बार गांव जरूर जाते हैं। राजस्थानी श्रमिकों के बारे में मांगीलाल कहते हैं, “सामाजिक रीति-रिवाजों व घरेलू कामकाज के कारण कई प्रवासी शहरों से वापस गांव चले तो जाते हैं, लेकिन फिर काम पर वापस आने में देर कर देते हैं, जिससे उनका कामकाज और आमदनी प्रभावित हो जाते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनके पास काम का हुनर होने के बावजूद भी वह काम नहीं करते। जब तक कमाया हुआ पैसा खर्च ना कर दें तब तक दूसरा कोई कामकाज शुरू नहीं करते। राजस्थानी श्रमिकों को नियमित रूप से मन लगाकर काम करना चाहिए। साथ ही अगर खाली समय बचता है तो कोई दूसरा काम-धंधा पकड़ के समय का सदुपयोग करना चाहिए।”

एक दूजे का साथ

राजसमन्द जिले की कुम्भलगढ़ तहसील के समीचा गांव निवासी हैं किशन सिंह व केसर सिंह। दोनों भाइयों ने अपने काम की शुरुआत अलग-अलग की। दूसरों के होटल व घर में खाना बनाने वाले इन दोनों भाइयों ने सोचा तक नहीं होगा कि एक दिन उनका स्वयं का भी रेस्त्रां होगा। पिछले सात सालों से ये दोनों भाई मिलकर

34-

अहमदाबाद में सफलतापूर्वक रेस्त्रां चला रहे हैं।

पैंतीस वर्षीय किशन सिंह पांच भाइयों में तीसरे नंबर पर हैं। किशन सिंह का बचपन गांव में ही बीता और उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा वहीं के एक विद्यालय से शुरू की पर चौथी

कक्षा के बाद उन्होंने स्कूल जाना छोड़ दिया। उस समय किशन सिंह की उम्र 13 साल थी और इनके बड़े भाई केसर सिंह, मुम्बई में ज्वैलरी कार्य करने लगे थे। किशन सिंह को घर पर खाली बैठा देख केसर सिंह उसे अपने साथ मुम्बई ले गए, जहां उन्होंने किशन को अपने गांव के ही एक परिचित के यहां खाना बनाने के काम पर लगा दिया। लगभग डेढ़ साल तक किशन ने वहां काम किया। इस काम के बदले किशन को 75 रुपए मासिक मिलते। इस प्रकार डेढ़ साल काम करने के बाद किशन गांव आया तो वापस मुम्बई गया ही नहीं। लोगों के पूछने पर वह लगातार टालता रहा। अगले तीन माह तक किशन घर पर ही रहकर खेती व घरेलू कार्य करता रहा।

तीन-चार माह बाद किशन फिर मुम्बई गया। इस बार वह अपने बड़े भाई केसर सिंह के साथ रहकर ज्वैलरी बनाने का काम करने लगा। किशन को वहां एक हजार रुपए मासिक पगार मिलती।

इसी बीच बड़ा भाई केसर सिंह कुछ दिनों के लिए गांव आया। गांव में किसी परिचित के संपर्क हुआ जो अहमदाबाद में काम करता था। उससे बात करने के बाद केसर सिंह का भी अहमदाबाद में काम करने का मन बना। यह फैसला उसने इसलिए भी लिया क्योंकि मुम्बई में पैसा कम मिलता था।

अहमदाबाद आकर अपने परिचित की मदद से केसर सिंह ने पकौड़ी का ठेला लगाना

शुरू किया। कुछ महीनों बाद केसर ने अपने छोटे भाई किशन को भी मुम्बई से अहमदाबाद बुला लिया। यह बात सन् 1984-85 की है।

किशन अहमदाबाद में रद्दी कागज खरीदकर उनकी थैलियां बनाकर बाजार में बेचने लगा। तीन वर्ष तक किशन ने यह काम किया। पॉलिथीन की थैलियां बाजार में आने से कागज की थैलियों की मांग कम होने लगी, जिससे किशन का मुनाफा प्रभावित हुआ और उसे थैलियां बनाने का काम छोड़ना पड़ा।

यह काम छोड़ने के बाद किशन सन् 1987 में अहमदाबाद से गांधीनगर चला गया, जहां सचिवालय के सामने उसने चाय की लॉरी लगा ली। वहां आसपास चाय की कोई अन्य दुकानें न होने की वजह से किशन का कामकाज ठीक चल पड़ा। महीने में उसकी लगभग 3 हजार रुपए तक की कमाई हो जाती। इस तरह वह तीन साल तक, बिना किसी रुकावट के, लॉरी लगाता रहा। किशन कुछ दिनों के लिए गांधीनगर से गांव आया तो फिर वापस जाने में देरी कर दी। इस काम से उसका मन भी उचट गया था। किशन सिंह ने दोबारा से चाय लॉरी का काम नहीं किया और लॉरी भी बेच दी।

जब किशन अपने भाई केसर के पास अहमदाबाद गया तब तक केसर पकौड़ी बनाने का काम छोड़कर "संकल्प" होटल में वेटर का काम करने लगे थे। केसर ने छोटे भाई को भी संकल्प होटल में ही वेटर का काम दिलवा दिया। यहां किशन को 550 रुपए मासिक पगार मिलती। किशन ने यहां भी चार साल ही काम किया, जबकि केसर लगातार संकल्प होटल में काम करता रहा। होटल का काम छोड़ने के बारे में किशन कहता है, "मैं मनमौजी था। अपनी मर्जी से काम करता था। मेरी मर्जी यहां काम करने की नहीं हुई तो मैंने काम छोड़ दिया। भाई ने मुझे एक ही जगह रुकने की सलाह दी लेकिन मैंने उसकी सलाह नहीं मानी।" किशन लगभग 5-6 साल तक अहमदाबाद की अलग-अलग होटलों में काम करते रहे जबकि केसर लगातार "संकल्प" होटल में ही वेटर के काम से जुड़े रहे।

अब तक दोनों भाइयों को होटल कार्य में अच्छा खासा अनुभव हो गया था। इतने वर्षों तक काम करने से कुछ पैसा भी जमा कर लिया था। सन् 2000 में दोनों भाइयों ने मिलकर अहमदाबाद में पावभाजी रेस्त्रां खोलने का मन बनाया। किशन ने भी केसर की सलाह को मानते हुए अलग-अलग जगह काम करने की बजाय एक ही जगह काम करना मुनासिब समझा। इस तरह से उन्होंने अहमदाबाद के वेजलपुर क्षेत्र में "एम.के. पावभाजी" नाम से रेस्त्रां खोल लिया।

पिछले सात सालों से दोनों भाई मिलकर यह रेस्त्रां चला रहे हैं। इस रेस्त्रां को सफल

35-

बनाने में केसर सिंह का बड़ा योगदान रहा। वह 1500 रुपए पगार पर एक ही होटल में लगातार 9 साल तक वेटर का काम करते रहे। केसर न केवल पैसा जमा करना चाहता था बल्कि होटल कार्य के सभी पक्षों का अनुभव भी लेना चाहता था। इस रेस्त्रां को खोलने में केसर की मेहनत रही तो किशन का साथ। दोनों भाइयों ने एक-दूसरे

36-

का सहारा बनकर रेस्त्रां की नींव रखी। किशन कहता है, सच तो "यह है कि बड़े भाई का योगदान रेस्त्रां को खोलने में ज्यादा रहा। भाई मुझे भी समय-समय पर सलाह देते रहे जो

मेरे काम आई और अब मैं भाई के साथ जुड़कर काम कर रहा हूँ। अब मैं कभी भी काम से दूर नहीं भागूंगा।"

अहमदाबाद में केसर ने अपना अलग मकान बना लिया है जबकि किशन किराए के मकान में रह रहा है। इनके रेस्त्रां में काम करने वाले लगभग सभी मजदूर केलवाड़ा क्षेत्र के ही हैं।

आज इस रेस्त्रां की वजह से किशन को भी स्थायी काम मिल गया है, जबकि केसर को छोटे भाई का साथ। दोनों भाइयों की एकजुटता का ही नतीजा है कि वे यह रेस्त्रां पिछले सात वर्षों से सफलतापूर्वक चला रहे हैं। भले ही दोनों भाइयों ने पहले अपनी-अपनी राह अलग चुनी हो लेकिन आज दोनों साथ-साथ हैं।

मिल कर खींचते रहे जीवन की गाड़ी

अहमदाबाद शहर का एक इलाका है मेमको। इस इलाके में राजस्थान के काफी लोग निवास करते हैं इस इलाके में। लगभग सौ घरों की आबादी का एक क्षेत्र है ईश्वर नगर। इनमें लगभग 90 मकान तो राजस्थानी परिवारों के ही हैं। ईश्वर नगर के मकान नंबर-9 में कैलाश वनजारा का परिवार रहता है। कैलाश मूल रूप से राजस्थान के पाली जिले की सोजत सिटी के आलावास गांव का रहने वाला है। आज से लगभग 45 साल पहले, कैलाश के पिता अपने गांव से आकर अहमदाबाद में बस गए थे। अपने गांव के वनजारा समाज का यह पहला परिवार था जो सबसे पहले अहमदाबाद आया।

कैलाश वनजारा का जन्म सन् 1967 को अहमदाबाद में हुआ। कैलाश के पिता उस समय रिक्शा चलाते और यों मेहनत-मजदूरी कर अपने परिवार का पालन-पोषण करते। कैलाश ने अपनी पढ़ाई अहमदाबाद में ही की। पढ़ाई में मन नहीं लगा तो सातवीं कक्षा बाद ही स्कूल छोड़ दिया। पढ़ाई छोड़ने के बाद घर बैठना नागवार गुजरा और कैलाश काम की तलाश में जुट गया। कैलाश ने पिता के साथ काम ना करने की ठानी, क्योंकि इरादा यह था कि अगर काम करें तो वह खुद का ही हो।

सन् 1980 में कैलाश को अहमदाबाद में हाथ लॉरी खींचने का काम मिल गया। उस वक्त कैलाश की उम्र महज 13 वर्ष थी। सालभर बाद, सन् 1981 में कैलाश की शादी हो गई। शादी राजस्थान में अपने गांव में ही हुई। पत्नी शादी के बाद लगभग पांच साल तक मायके में ही रही। इधर अहमदाबाद में कैलाश लगातार काम करते रहे। पांच वर्ष बाद पत्नी भी अहमदाबाद आ गई। दोनों पति-पत्नी अहमदाबाद के फूड मार्केट में एक साथ मिलकर हाथ लॉरी खींचने लगे। हर महीने, दोनों लगभग 1200 रुपए कमा लेते। अलग-अलग काम करने की बजाय पति-पत्नी एक ही कारखाने के लिए काम करते जिससे काम भी रोजाना मिल जाता। इस प्रकार दोनों ने लगातार 4 साल तक हाथ लॉरी खींची।

इस बीच कैलाश को शराब की बुरी लत लगी और उनकी मानसिक स्थिति गड़बड़ा गई। ऐसे में कैलाश लॉरी खींचने में असमर्थ हो गया। पर उनकी पत्नी सीता लगातार लॉरी खींचकर घर का सारा खर्च चलाती रही। लगभग डेढ़ साल तक कैलाश घर पर बैठे रहे, तब फिर से काम शुरू करने का मन बनाया। पर पहले कैलाश ने शराब से तौबा कर ली।

इस बार कैलाश अहमदाबाद स्थित वासुदेव मेटल सेन्टर कारखाने में काम पर लगे। जिन हाथों से लॉरी खींचने का काम करते थे, उन्हीं हाथों से इस कारखाने में लोहा पीटने लगे। कैलाश को यहां 8 घंटे काम करना होता जबकि मजदूरी मिलती प्रतिदिन सिर्फ 28 रुपए। तीन साल बाद उनकी दैनिक मजदूरी 28 रुपए से बढ़कर 45 रुपए

37-

हो गई। कैलाश यहां चार साल तक ही काम कर पाए। इस काम के बारे में कैलाश कहते हैं, "इस कारखाने में काम ज्यादा करवाते, पैसा कम देते थे। बोनस भी नहीं मिलता था, जबकि दूसरे कारखानों में बोनस देते थे। मैंने मालिक से मजदूरी बढ़ाने व बोनस देने के लिए कहा। मजदूरी तो जरूर बढ़कर 45 रुपए हो गई लेकिन बोनस नहीं दिया, जिससे मैंने साढ़े चार साल बाद ही यहां से काम छोड़ दिया।"

यहां से काम छोड़कर कैलाश अहमदाबाद में ही 'आनन्द फ़ैक्ट्री' में काम करने लगे, जहां उन्हें 50 रुपए दैनिक मजदूरी मिलने लगी और साथ में बोनस भी। प्रतिवर्ष उनकी दैनिक पगार में 10 रुपए भी बढ़ते गए। इस दौरान कैलाश की पत्नी सीता बाई भी लगातार हाथ लॉरी खींचकर कमा रही थी, जिससे घर का खर्चा चलता रहा। कैलाश अपनी कमाई की बचत के लिए बीसी (लोगों के समूह द्वारा पैसा इकट्ठा करके बचत करना) भरते रहे, जिससे पैसा एकत्रित होने लगा।

लगभग ढाई साल फ़ैक्ट्री में काम करने के बाद सन् 1995 में कैलाश ने एक पुराना लोडिंग रिक्शा 31,500 रुपए में खरीदा। इसके लिए कुछ पैसा तो कैलाश ने अपनी जमा पूंजी से जुटाया, जबकि 20 हजार रुपए फाइनेन्स कंपनी से ऋण के तौर पर लिए। ऋण की किश्त 1400 रुपए वे हर महीने चुकाते रहे। कैलाश ने यह रिक्शा खुद चलाने की बजाय 1500 रुपए मासिक वेतन देकर एक ड्राइवर से चलवाया। ड्राइवर रिक्शा चलाता, जबकि कैलाश आनन्द फ़ैक्ट्री में लगातार काम करते रहे। कैलाश ने रिक्शे को नरोड़ा स्थित एक कारखाने में लगवा दिया, जिससे उन्हें सब खर्चा निकालकर लगभग 1200 रुपए महीने के मिल जाते। समय मिलने पर कैलाश भी कभी-कभार रिक्शा गाड़ी पर ड्राइवर के साथ चले जाते।

दो साल तक यह सिलसिला चलता रहा। कैलाश को जब यह रिक्शा पुराना होता दिखाई दिया तो उन्होंने इसे घर पर रख दिया। सन् 1996 में कैलाश ने फिर एक नया रिक्शा लेने का विचार किया और 58 हजार रुपए में नया लोडिंग रिक्शा खरीद लिया। ये रुपए जुटाने के लिए कैलाश ने 31 हजार रुपए में अपना पुराना रिक्शा बेच दिया, 10 हजार रुपए अपने दोस्त से लिए, 5 हजार रुपए कंपनी से लिए, तो कुछ पैसा अपनी जमा पूंजी से जुटाया। इस तरह उनके पास फिर से नया लोडिंग रिक्शा आ गया। इस बार रिक्शे पर ड्राइवर रखने की बजाय कैलाश ने स्वयं ही रिक्शा चलाने का निर्णय लिया। यह रिक्शा भी उसी कारखाने के लिए चलाया जहां वह काम करते

थे। अगर कैलाश की बात मानें तो इस रिक्शे से उनको महीने से 12-13 हजार रुपए की आमदनी हो जाती थी। कैलाश जहां दिन में रिक्शे को कारखाने में चलाते तो वहीं रात को भी दो बजे बाद वे इस रिक्शे में बर्फ की सिल्लियां लादकर ले जाते। रातभर में रिक्शे के दो चक्कर लगाते जिससे उन्हें 250 रुपए मिलते। तीन साल तक वे लगातार इसी तरह काम करते रहे।

सन् 1999 में कैलाश ने 1 लाख 70 हजार रुपए में एक पुरानी टाटा 407 गाड़ी भी ले ली। तीन माह बाद ही इस गाड़ी को एक लाख बीस हजार रुपए में बेच दिया। इस सौदे में उन्हें 50 हजार रुपए का घाटा लगा। घाटा लगने के बाद भी कैलाश का हौसला उगमगाया नहीं और अपने रिक्शे को वे नरोड़ा स्थित कारखाने में निरन्तर चलाते रहे।

अब तो कैलाश को गाड़ियां खरीदने-बेचने का चस्का लग गया। सन् 2001 में कैलाश ने फिर 1 लाख 56 हजार रुपए में एक पुरानी टाटा 407 गाड़ी खरीदी। गाड़ी को चलाने के लिए दो हजार रुपए में ड्राइवर भी रख लिया। इस गाड़ी को लगातार 6 माह तक चलवाते रहे जिससे हर महीने लगभग 6-7 हजार रुपए की कमाई हो जाती। छह माह बाद गाड़ी का इंजन खराब होने की वजह से यह गाड़ी भी कैलाश ने 1 लाख 62 हजार रुपए में बेच दी।

कैलाश ने उसी साल, फिर से, 1 लाख 8 हजार रुपए में एक ऑटो रिक्शा खरीदा। इस ऑटो रिक्शे पर भी ड्राइवर रखा जिसे 2200 रुपए मासिक देने लगे। यह ऑटो रिक्शा कैलाश ने ढाई साल तक ही अपने पास रखा।

सन् 1999 से 2001 की अवधि में कैलाश के जीवन में काफी उतार-चढ़ाव आए। वह एक के बाद एक गाड़ियां खरीदते और बेचते रहे। इसके अलावा राजस्थान स्थित अपने गांव में भी उन्होंने मकान बनवाया जिसमें 66 हजार रुपए खर्च हुए। इसी दौरान उन्होंने अपनी लड़की की भी शादी की जिसमें लगभग 50 हजार रुपए खर्च किए। इसी अवधि में कैलाश के पिता का देहांत भी हुआ जिसमें लगभग 30-35 हजार रुपए का खर्चा हुआ। इतने खर्चों के बावजूद भी न तो कैलाश की आजीविका प्रभावित हुई और न ही उनका हौसला।

38-

गाड़ियां खरीदने-बेचने का क्रम यूं ही चलता रहा। सन् 2004 में कैलाश ने 1 लाख 35 हजार रुपए में टाटा 600 मॉडल की गाड़ी ली। इस गाड़ी को भी अपनी ही कंपनी में चलाते रहे। गाड़ी को चलाने के लिए 2500 रुपए की मासिक पगार पर ड्राइवर रखा और दो मजदूर भी रखे। जिन्हें भी 1500 रुपए मासिक वेतन देना पड़ता था। कुछ महीनों के बाद कैलाश ने इस गाड़ी को भी बेच दिया। यह अब तक की अंतिम गाड़ी थी जो कैलाश ने ली।

पिछले तीन सालों से कैलाश के पास एक लोडिंग रिक्शा है, जिसे वह स्वयं चला रहे हैं। इन तीन वर्षों में उन्होंने कोई दूसरी गाड़ी नहीं ली। फिलहाल तो वे इसी एक गाड़ी से संतुष्ट हैं। भविष्य में जरूर गाड़ी लेने का इरादा बना रखा है। अभी यह गाड़ी किसी कारखाने में नहीं लगा रखी है फिर भी प्रतिदिन उनके पास काम आता रहता है। गाड़ी का खर्चा निकालकर उनके पास महीने में 3-4 हजार रुपए बच जाते हैं।

कैलाश के परिवार की वित्तीय स्थिति आज ठीक है। वह लोडिंग रिक्शा चला रहे हैं तो उनकी पत्नी भी अभी तक हाथ लॉरी खींचकर मजदूरी कर रही है। कैलाश का 24 वर्षीय पुत्र मुकेश भी अहमदाबाद में ही एक स्वयंसेवी संस्था के साथ जुड़कर काम कर रहा है। मुकेश को हर महीने 3000 रुपए पगार मिल जाती है। मुकेश कहता है, “मेरे पप्पा ने काफी संघर्ष किया है। जब पप्पा ने टाटा 407 गाड़ी ली थी तब मैं भी गाड़ी पर जाता था। मेरी इच्छा होती थी कि पप्पा के काम में हाथ बंटाऊं लेकिन पप्पा मानते नहीं। उनकी इच्छा है कि मैं कोई दूसरा काम करूं। अगर भविष्य में किसी कारणवश मुझे अपने पप्पा का काम अपनाना भी पड़ा तो मैं संकोच नहीं करूंगा।”

कैलाश की पत्नी सीता बाई कहती है, “शादी के बाद पहली बार अहमदाबाद आई तब मुकेश के पापा हाथ लॉरी खींचते थे। अहमदाबाद में महिलाएं भी यह काम करती हैं, इसलिए मैं भी बिना किसी शर्म व संकोच के अपने पति के साथ लॉरी खींचने चली जाती। पति अलग से काम करने लगे, तब भी मैंने अपना काम जारी रखा क्योंकि इस काम की आदत सी हो गई थी। पर अब यह काम करने का मन नहीं करता। अब थक जाती हूं।”

कैलाश का कहना है कि “अगर लगन हो तो कुछ भी काम मुश्किल नहीं। जहां भी कोई काम करे सबसे पहले अपनी पहचान बनाएं। साथ ही खर्चा निकालकर बचत करने की भी आदत डालनी चाहिए।” कैलाश ने भी अपना बैंक में बचत खाता खुलवा रखा है। यहां तक की उसने पैन कार्ड भी बनवा रखा है।

कैलाश राजस्थान में स्थित अपने गांव को भी नहीं भूले। काम के सिलसिले में जब भी मौका मिलता है तो अपने परिवार के साथ गांव जरूर जाते हैं। कैलाश कहते हैं, “अगर मुकेश अहमदाबाद में अच्छे से खाने-कमाने लग जाए, परिवार के पालन-पोषण की ठीक से जिम्मेदारी निभाने लग जाए तो मैं राजस्थान वापस जाकर अपने गांव में ही रहना पसंद करूंगा।”

बहरहाल, कैलाश ने अपने काम का जो तरीका अपनाया वही उनकी आजीविका का साधन बना। इन्होंने जो भी गाड़ी खरीदी उसे बेचने पर ज्यादातर लाभ ही कमाया। कैलाश को अपनी पत्नी का भी भरपूर सहयोग मिला। आज अहमदाबाद शहर में कैलाश ने अपने काम व अच्छे व्यवहार के कारण स्वयं की पहचान भी बनाई है।

(42)

विदेश जाने वाला पहला गमेती

महज दस वर्ष की उम्र में चाय की लॉरी पर काम करने वाले सोहनलाल गमेती ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि एक दिन वह विदेश जा पहुंचेगा। यहां तक पहुंचने से पहले उसके मालिक ने सोहनलाल की ईमानदारी की कई बार परीक्षा भी ली, और हर बार वह मालिक के विश्वास पर खरा उतरा और अंत में अफ्रीका जाने का टिकट उसे मिल ही गया। आखिर लॉरी पर काम करने वाला सोहन विदेश तक जा पहुंचा।

27 वर्षीय सोहनलाल गमेती गोगुन्दा तहसील के ओबरा कलां में रहता है। कहने को

39-

तो वह स्कूल भी गया, लेकिन दो क्लास से आगे नहीं बढ़ पाया। सोहनलाल के पिता चिनाई का काम करते थे। परिवार में और कोई कमाने वाला नहीं था। इसलिए सोहनलाल के नाजुक कंधों पर घर की जिम्मेदारी आ गई। पढ़ाई से तो पहले ही उसका नाता छूट गया था। दस वर्ष की उम्र

में गांव से पलायन करके ओबरा खुर्द निवासी मूलशंकर के संपर्क की वजह से वह अहमदाबाद जा पहुंचा। मूलशंकर का एक परिचित अहमदाबाद में चाय की लॉरी लगाता था। मूलशंकर ने अपने सहयोग से सोहन को भी उस लॉरी पर काम पर लगा दिया। सोहनलाल को 50 रुपए महीने की पगार पर काम मिल गया। उसने लॉरी पर चार साल तक काम किया। जब काम छोड़ा तब तक उसे 100 रुपए मासिक मजदूरी मिलने लगी थी।

लॉरी पर काम करते-करते सोहनलाल गुजरात के कृष्णाभाई के संपर्क में आया जिन्होंने उसे अपने होटल में हेल्पर का काम दिया। हेल्पर का काम करते-करते उसका रुझान खाना बनाने की ओर हुआ। रसोई में जब भी खाना बनता वह बारीकी से ध्यान देता। इस प्रकार धीरे-धीरे वह खाना बनाना सीख गया और एक वह समय भी आया जब सोहनलाल रसोई कार्य में पूर्ण रूप से दक्ष हो गया। उसके मालिक कृष्णा भाई को भी इसका अंदाजा हो गया था। उन्होंने सोहनलाल को सही जगह काम देने का निर्णय किया। पर पहले कृष्णा भाई सोहनलाल की विश्वसनीयता को परखना चाहते थे। सोहनलाल कृष्णा भाई के साथ ही रहता था। कृष्णा भाई ने उसकी परीक्षा

(43)

के लिए बिस्तर पर रोज कुछ ना कुछ पैसे व छोटी-मोटी सामग्री रखना शुरू किया, लेकिन सोहनलाल ने उनको कभी नहीं छुआ। अपनी ईमानदारी के चलते वह घर पर यहां-वहां पड़ा नकद कृष्णाभाई को सुपुर्द कर देता। जिससे सोहनलाल पर कृष्णाभाई का विश्वास बढ़ गया। इसका नतीजा हुआ कि कृष्णा भाई ने सोहन को छात्रों के हॉस्टल में खाना बनाने का काम सौंप दिया।

40-

उस हॉस्टल में 20-25 छात्र रहते थे जिनका खाना बनाने की जिम्मेदारी अकेले सोहनलाल पर थी, हालांकि बर्तन साफ करने के लिए उसने अलग से हेल्पर रख रखा था। रसोई से संबंधित सारी रसद सामग्री छात्रों की होती। अगर सोहनलाल की बात मानें तो उसे महीने के 7-8 हजार रुपए

मिलते। हॉस्टल में उसने दो साल तक निरन्तर काम किया, और इस अवधि में उसने काफी जमा पूंजी इकट्ठा कर ली।

तभी अचानक सोहनलाल को विदेश जाने का मौका मिला। दक्षिण अफ्रीका के सीसल में रसोई कार्य के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी। कृष्णाभाई ने सोहनलाल के सामने यह प्रस्ताव रखा। सोहनलाल विदेश जाने के नाम से तत्काल तैयार हो गया। उसकी इच्छा थी कि कम से कम एक बार तो वह हवाई जहाज में बैठे, हालांकि उसे यह पता था कि एक बार विदेश जाने पर उसे कम से कम दो साल तक लगातार काम करना पड़ेगा और इस अवधि में उसे घर आने का मौका नहीं मिलेगा। फिर भी वह विदेश जाने को तैयार हो गया। पासपोर्ट व वीजा का इंतजाम कृष्णा भाई ने ही कर दिया। सोहन के विदेश जाने की जानकारी तब तक किसी को नहीं थी, यहां तक कि उसके परिवार को भी नहीं। परिवार वालों को केवल यही पता था कि सोहन अहमदाबाद में ही काम करता है। निर्धारित समय पर सोहनलाल अहमदाबाद से मुम्बई पहुंचा। वहां 5 हजार रुपए के कपड़े खरीदे और मुम्बई से हवाई जहाज में बैठकर विदेश के लिए उड़ान भी। कृष्णा भाई ने लगभग 150 मजदूरों के लिए अलग से हवाई जहाज बुक करवाया था।

सीसल पहुंचने पर सभी श्रमिकों को लेने के लिए हवाई अड्डे पर बस आ गई। होटल में पहुंचने पर उन्होंने थोड़ी देर आराम किया और फिर काम पर लग गए। सोहनलाल ने बताया कि मुझे काफी नींद आ रही थी। थकान हो रही थी पर वहां जाते ही काम पर लगा दिया गया। दो साल तक वहां काम किया। शुरुआत में केवल 1350 रुपए महीने के मिलते, फिर 1500-1600 रुपए मिलने लगे। महीने में फोन करने के लिए 300 रुपए अलग से मिलते। सीसल पहुंचने के 6 माह बाद सोहनलाल ने अपने घर

पर फोन करके पिताजी को विदेश में होने की जानकारी दी। सीसल में प्रवास के बारे में सोहनलाल बताता है, शुरुआत में मन नहीं लगता था। घर परिवार की याद सताती। सोचता कि वहां से भागकर तुरंत घर पहुंच जाऊं, लेकिन जिस होटल में हम काम करते थे वह एक टापू पर बना था। बाहर निकलते ही पानी ही पानी दिखाई देता। वहां के लोगों की भाषा समझने में भी मुश्किल आती। जैसे-तैसे करके मैंने दो साल निकाल ही दिए।" दो साल काम पूरा करने के बाद सन् 2005 में सोहनलाल विदेश से वापस घर लौटा।

घर आते ही सबसे पहले उसने अपने मकान का काम शुरू करवाया। सोहन के पिताजी चिनाई का कार्य करते थे। इसीलिए उन्होंने भी मकान बनाने में मदद की। एक महीने के अन्दर सोहन ने केलू के बने कच्चे मकान की जगह पक्का मकान खड़ा कर दिया। सोहनलाल की बात मानें तो उसने अपने इस आशियाने में 3.50 लाख रुपए लगा दिए, और अभी भी 1.50 लाख रुपए और लगाने की सोच रहा है। मकान का काम पूरा होते ही फिर से वह अपने रसोई कार्य में जुट गया। इस बार उसने राजकोट में शादी समारोह में खाना बनाने का काम किया। वहां उसे महीने के 3-4 हजार रुपए मिल जाते। दो साल से वह इसी प्रकार के काम कर लेता है। बीच में सोहनलाल ने ठेके पर होटल भी चलाई, लेकिन एक महीने के अन्दर नुकसान के चलते उसे होटल छोड़नी पड़ी।

फिलहाल सोहनलाल घर पर ही है। सावों (शादी, समारोह) का समय होने पर वह फिर से काम पर लौट जाएगा। घर पर रहकर उसने अपने पिताजी के साथ चिनाई का काम सीख लिया और समय मिलने पर उनके साथ चिनाई के काम पर भी चला जाता है, जिससे दिन के 120 रुपए कमा लेता है। सोहनलाल के पिता लालाराम कहते हैं, "चिनाई सोहन ने मुझसे बोला कि मैं भी चिनाई कार्य करना चाहता हूं। मैंने भी तुरन्त हामी भर दी। पिछले 15-20 दिनों से ओबरा कलां में सोहन मेरे साथ मिलकर चिनाई कार्य में हाथ बटा रहा है।"

सोहनलाल दो भाइयों में सबसे बड़ा है। एक भाई फिलहाल छठी कक्षा का छात्र है और दूसरे को स्कूल में दाखिला दिलाने की तैयारी है। सोहनलाल को अपने अनपढ़ रहने पर काफी पछतावा होता है। वह कहता है, "अगर मैं पढ़ लेता तो न जाने आज कहां पहुंच जाता। मैं पढ़ नहीं पाया लेकिन अपने दोनों भाइयों व बच्चे को अच्छी शिक्षा दिलवाऊंगा। उन्हें कभी भी न पढ़ने का पछतावा नहीं होगा।" सोहनलाल का भविष्य में छोटे भाई के लिए दुकान

41-

खुलवाने का भी इरादा है। आज सोहनलाल के घर में क्या नहीं है। रंगीन टी.वी., वीसीडी, टेप आदि मनोरंजक साधन सोहनलाल ने अपने घर में ला रखे हैं। सोहनलाल की माताजी आज भी रोजगार गारंटी कार्यों में जाकर परिवार की आय में अपनी भागीदारी निभाती हैं।

42-

ओबरा कलां के निवासी रमेश चंद पालीवाल सोहन के बारे में कहते हैं, “गमेती समाज के लोग आप देखते ही हैं। कोई आगे नहीं बढ़ पाता। सोहन की स्थिति देखकर पता चलता है कि गमेती समाज में यह व्यक्ति ही आगे बढ़ा है। सोहन काफी मेहनती है।” ओबरा कलां के ही निवासी

लक्ष्मणलाल पालीवाल हों या भगवती पालीवाल। सब सोहन की मेहनत व कामयाबी के बारे में बताते हैं।

ओबरा खुर्द के कानाराम गमेती कहते हैं, “ओबरा कलां व ओबरा खुर्द से काफी लोग विदेश जाकर आ गए हैं लेकिन गमेती समाज का सोहन ही वह पहला व्यक्ति है जो विदेश जाकर आया है। इससे सोहन के साथ हमारे समाज का भी नाम हुआ है।” जब से वह विदेश से आया है पूरे गांव व अन्य समाज में उसकी इज्जत बढ़ी है। लोग उसका सम्मान करते हैं।

ललक लगातार सीखने की

नोजाराम गमेती आज जिस मुकाम पर है उसे वहां पहुंचने के लिए ना जाने कितने पापड़ बेलने पड़े हैं। मात्र 2 रुपए मजदूरी पर उसने अपने काम की शुरुआत की। जहां काम मिला वहीं किस्मत आजमाई। कैंटीन में काम करते हुए लोगों के जूटे बर्तन तक साफ किए। ट्रक पर खलासी का काम किया। खलासी से ड्राइवर बनने की कोशिश की तो गाड़ी पलट गई। मजदूरी करते ठेकेदार बना तो कारोबार में नुकसान उठाना पड़ा। जीवन के इस कठिन दौर से गुजरते हुए भी उसने अपना हौसला बनाए रखा क्योंकि कुछ नया सीखने और आगे बढ़ने की लगन जो थी। अपनी इसी जुझारू प्रवृत्ति के कारण ही नोजाराम ने एक सफल मिस्त्री के रूप में आज अपनी पहचान बनाई है। पिछले बीस साल से वह यही सब काम करता रहा है और अब भी ठेकेदार बनने के लिए प्रयासरत है।

नोजाराम उदयपुर जिले की गोगुन्दा तहसील की तिरोल पंचायत के गुमान गांव के वटारवाड़ा फला का रहने वाला है। महज चौदह साल की उम्र में उसने काम की खातिर घर व परिवार छोड़ दिया।

तिरोल पंचायत मुख्यालय से उसके घर का फासला महज दो किलोमीटर है लेकिन वहां तक पहुंचने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी। एक तो बरसता पानी और, दूसरे पहाड़ों पर बने संकरे रास्ते। आगे रास्ते में मिलने वाली नदी में पानी की आवक जरा भी ज्यादा हो जाए तो नोजाराम तक पहुंचना मुश्किल हो जाए। खैर, जैसे-तैसे नोजाराम के घर पहुंचे। केलू से बना कच्चा घर था, घर के सामने था पशुओं के लिए बना कच्चा छप्पर। एक कमरे में सिमटा था नोजाराम का घर। कमरे के अन्दर बैठने के लिए उसने चटाई बिछाई। शर्ट व तौलिया लपेटे नोजाराम भी सामने बैठ गया। पास ही में उसकी पत्नी— भूरखी बाई बच्चे को गोद में खिला रही थी। कमरे के एक

43-

तरफ चूल्हा तो दूसरी तरफ रोजमर्रा के जीवन में काम आनी वाली सामग्री। बातों ही बातों में नोजाराम अपना बचपन याद करने लगा। बचपन में वह जंगल से लकड़ियां लाकर बेचता था। जंगल से लकड़ियों की मूली

(गट्टर) सिर पर रखकर पैदल ही नान्देशमा गांव जाकर बेचता। घर आकर खाना खाता। खाना भी कभी मिलता, खाना खाकर स्कूल जाता। शाम को वापस घर आकर फिर से जंगल से लकड़ी लाने जाता। लकड़ियों की एक मूली बेचने पर दो किलो अनाज मिलता। काम की वजह से नोजाराम ज्यादा पढ़ नहीं पाया और सातवीं जमात के बाद ही उसने स्कूल छोड़ दिया।

उसके नाजुक कंधों पर काम की जिम्मेदारी आ गई थी। स्कूल छोड़ने के बाद गांव में चल रहे नहर के काम से वह जुड़ा। यहां मजदूरी करने के बदले 11 किलो अनाज प्रतिदिन मिलता। पन्द्रह दिन बाद ही उसने यह काम छोड़ दिया। नोजाराम की उम्र उस समय चौदह साल ही थी। अभी तो उसके खेलने कूदने के दिन थे लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते उसका बचपन कहीं खो गया। गांव के ठेकेदार अमराराम के

44-

संपर्क में आने से नोजाराम की किस्मत उसे तिरोल से करनाल (हरियाणा) ले गई। यहीं से नोजाराम के पलायन की शुरुआत हुई। करनाल में उसे गत्ते बनाने का काम मिला। सुबह शाम दो-दो घंटे काम करने के बदले मिलते महज दो रुपए। यह काम उसने दो महीने ही किया। करनाल से कार्य छोड़ने का कारण बताते नोजाराम कहता है, "साहब, यहां का खाना-पीना अपने को कुछ जमा नहीं। इसलिए दो महीने के भीतर ही काम छोड़ दिया।" आखिर जमता कैसे? नोजाराम पहली बार घर से इतनी दूर जो गया था।

दो महीने के अपने पहले प्रवास के बाद वह घर वापस लौट आया। इसी बीच उसका बड़ा भाई मुम्बई में काम करने लगा था। बड़े भाई ने नोजाराम को मुम्बई स्थित "भारत प्लास्टिक" उद्योग की कैन्टीन में लगवा दिया। जहां उसे 450 रुपए महीने की पगार पर काम मिला। ग्राहकों को चाय नाश्ता देना व जूटे बर्तन साफ करना जैसे काम नोजाराम ने किए। पर यह काम भी एक साल बाद ही छोड़ दिया। काम छोड़ने का कारण यह था कि उसका बड़ा भाई उसकी पगार उठा लेता था। पैसे मांगने पर थोड़े-बहुत पैसे दे देता। कभी-कभार फिल्म दिखाकर मन बहला देता। पर अपनी पूरी कमाई नोजाराम को नहीं मिलती।

मुम्बई छोड़ने के बाद नोजाराम किसी परिचित के बुलावे पर मुम्बई से भीलवाड़ा जा पहुंचा, जहां उसे ट्रक पर 300 रुपए महीने व 10 रुपए प्रतिदिन भत्ते के हिसाब से खलासी का काम मिला। छह माह तक उसने खलासी का काम किया व इस अवधि में वह देशभर के कई इलाकों में घूमा। कुछ ना कुछ सीखने की ललक का ही नतीजा था कि वह ड्राइवर सीट पर बैठकर ट्रक चलाने के मोह को छोड़ नहीं पाया। पर हुआ

यह कि गाजियाबाद में इस नौसिखिए की गाड़ी पलट गई। दुर्घटना में नोजाराम बच तो गया लेकिन गाड़ी को बहुत नुकसान हुआ और नोजाराम को नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

सन् 1991-92 की इस घटना के बाद नोजाराम भीलवाड़ा से घर वापस आ गया। दस-बारह दिन ही गुजरे होंगे कि किस्मत उसे राजसमंद जिले के केलवा गांव ले गई। नोजाराम के गांव के कई लोग वहां खनन के कार्य से जुड़े थे। उनसे पहचान के चलते नोजाराम भी वहां पहुंच गया। वहां उसे 14 रुपए प्रतिदिन की मजदूरी पर काम मिला। मजदूरी करते-करते मशीन चलाने का काम मिल गया, जिससे मजदूरी भी बढ़कर 20 रुपए मिलने लगी। आखिर एक दिन नोजाराम खनन के कार्य में ठेकेदार बन गया। इस मुकाम तक पहुंचने में उसे दो साल का समय लगा।

अब नोजाराम खुद ठेका लेकर काम करने लगा। कुछ सालों तक कामकाज ठीक चला। महीने भर का खर्चा निकालकर 5-6 हजार रुपए बच जाते थे, लेकिन तब किस्मत ने धोखा दिया। उसे 25 हजार रुपए का नुकसान उठाना पड़ा। अपनी जमा पूंजी से व उधार लेकर उसने नुकसान की भरपाई की। इसी बीच नोजाराम की शादी हो गई। कुछ समय बाद ही उसके माता-पिता का निधन भी हो गया। घर पर कुंआ बंधवाया था, इसमें भी काफी खर्चा हुआ।

इन कठिन परिस्थितियों व सदमों के बाद भी नोजाराम ने हिम्मत नहीं हारी। हौसले बुलंद रखे और नई राह तलाशी। इस बार उसने दमन की ओर रुख किया। दमन में उसके गांव के लोग काम करने जाते थे जिनके संपर्क से नोजाराम भी दमन पहुंचा। यहां प्लास्टिक के बर्तन बनाने वाले कारखाने में उसे 60 रुपए मजदूरी से कार्य मिला। मजदूरी करते-करते वह मशीन चलाने लगा। इस कारण उसकी मजदूरी भी 60 से बढ़कर 80 रुपए हो गई। महीने में रविवार के अवकाश को छोड़कर बाकी सभी दिनों उसे आठ घंटे प्रतिदिन काम करना

पड़ता। रहने व खाने की व्यवस्था अलग होती थी। खर्चा ज्यादा व मजदूरी कम। सो नोजाराम को यहां काम करना जमा नहीं। आखिरकार पांच साल नियमित रूप से कार्य करने के बाद नोजाराम ने अक्टूबर 2005 में दमन भी छोड़ दिया और फिर से गांव लौट आया। उसकी पगार व भत्तों से उसे 14 हजार रुपए मिले। घर आकर वह खेती के कार्य में जुट गया। वह 6 माह तक घर पर ही रहा।

मई-जून 2006 में नोजाराम आजीविका ब्यूरो संस्था के संपर्क में आया। उसे पता चला कि संस्था नल फिटिंग का प्रशिक्षण देती है। नोजाराम को अपने जीवन में कुछ ना

45-

कुछ सीखने की ललक हमेशा रही थी। इसी का नतीजा था कि उसने नल फिटिंग के प्रशिक्षण से जुड़ने का फैसला किया, लेकिन यह फैसला भी उसे कठिन परिस्थितियों में लेना पड़ा। महज सात दिन के जन्मे अपने बच्चे व पत्नी को घर पर अपने परिवार के अन्य सदस्यों के सहारे छोड़कर कुछ नया सीखने की चाहत में वह 55 किलोमीटर

46-

दूर उदयपुर आ पहुंचा। यहां एक महीने तक उसने श्रमिक दक्षता विकास प्रशिक्षण शिविर से जुड़कर नल फिटिंग का प्रशिक्षण लिया। प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद 22 जून 2006 को वह उदयपुर के ठेकेदार प्रेमचन्द्र माली के संपर्क में आया। प्रेमचन्द्र माली ने उसे 80

रुपए दैनिक मजदूरी पर नल फिटिंग का काम दिया। नोजाराम उदयपुर में सेक्टर 14 के एक मकान में अपने साथियों के साथ किराए पर रहने लगा। अक्टूबर 2006 में उसकी दैनिक मजदूरी बढ़कर 90 रुपए हो गई। नोजाराम ने उदयपुर में मार्च 2007 तक काम किया।

पिछले तीन महीने तक नोजाराम घर पर रहकर खेती कार्य में व्यस्त रहा। नोजाराम ने किसी अन्य ठेकेदार के साथ काम करने की बजाय खुद ही ठेका लेने का मन बनाया। “अगर मैं खुद का काम लेने लगूंगा तो मेरे साथ दस और लोगों को रोजगार मिलेगा” यही सोचकर जुलाई माह में नान्देशमा गांव में उसने नल फिटिंग का ठेका लिया। इस काम में उसने अपने साथ दो अन्य मजदूरों को भी रखा। प्रत्येक मजदूर को 100 रुपए दैनिक मजदूरी दी। काम 10 दिन में पूरा हो गया और नोजाराम को करीब 4,500 रुपए की आमदनी हुई।

नोजाराम ने अब नल फिटिंग मिस्त्री के काम का मन तो बना लिया है पर इस काम के औजार खरीदने के लिए उसे 10-12 हजार रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। फिलहाल उसने 5,000 रुपए तो जुटा लिए हैं। औजार खरीदने के लिए अभी भी लगभग इतने ही रुपयों की और जरूरत है। इसके लिए नोजाराम बैंक से ऋण लेने की जुगाड़ में है।

नोजाराम अपने बच्चों की बेहतर परवरिश को लेकर भी चिंतित है। नोजाराम के तीन लड़के हैं, जिनमें 10 वर्षीय शंकर व 8 वर्षीय कमलेश स्कूल जाने लगे हैं। नोजाराम इनकी शिक्षा व परवरिश में कोई कसर नहीं छोड़ना चाहता। स्कूल खुलते ही बच्चों के लिए किताबें व बस्ता लाकर रख लिया है। नोजाराम कहता है, “बाबूजी जो काम मैंने सीखा है वह भविष्य में मेरे बच्चों के काम आएगा। घर में रहकर ही बच्चों को कुछ सिखा दूंगा।”

नोजाराम के परिवार का बीपीएल कार्ड बना हुआ है, जिससे समय-समय पर राशन की व्यवस्था हो जाती है। नोजाराम के तीन भाई हैं, चारों भाइयों के पास चार बीघा जमीन थी। ग्यारह साल पहले जमीन का बंटवारा होने से प्रत्येक के पास एक बीघा जमीन आई। इसी जमीन के टुकड़े पर वह खेती करता है। वटारवाड़ा फला लगभग 20 परिवारों की बस्ती है, सभी परिवार गमेती समाज के हैं। लगभग हर परिवार का कोई ना कोई सदस्य किसी ना किसी रूप से पलायन करता है। इन सबके बीच नोजाराम ही वह शख्स है जो अभी तक लगातार कोई ना कोई काम करता रहा है। नोजाराम के बचपन के संघर्ष भरे दिनों के बारे में उसकी काकी रोड़की बाई कहती है, “बचपन में नोजाराम मेरे साथ जंगल में लकड़ियां लाने जाता था। हम दोनों नान्देशमा गांव तक पैदल चलकर लकड़ियां बेचते थे। नोजाराम को खाना भी कभी-कभी एक वक्त का मिलता था। नोजाराम ने बड़ा दुख देखा है। अभी खुशी है कि नोजाराम कमाई कर रहा है।”

नोजाराम के साथ बासलियां गांव के तेजाराम गमेती ने भी नल फिटिंग का प्रशिक्षण लिया था। तेजाराम कहता है, “मैं सूरत में साड़ी कटिंग का काम करता था। वहां से मैंने एडवांस ले रखा था इसलिए मैं नल फिटिंग का काम नहीं कर पाया। मुझे खुशी है कि हमारा साथी व हमारे समाज का नोजाराम इस काम को बराबर कर रहा है।” अपने साथियों व पलायन करने वाले अन्य श्रमिकों के लिए नोजाराम का कहना है कि अगर कोई पूरी उम्मीद व लगन से कार्य करे तो उसके लिए कोई भी कार्य मुश्किल नहीं है। व्यक्ति के पास हर प्रकार का हुनर होना चाहिए।

नोजाराम गमेती का हौसला देखते ही बनता है। कुछ कर गुजरने की हसरत मन में पाले वह लगातार सफलता की ओर अग्रसर है। इसमें कोई दो राय नहीं कि नोजाराम पलायन करने वाले उन श्रमिकों के लिए प्रेरणा स्रोत है जो काम न मिलने की सूरत में हिम्मत हार बैठते हैं। नोजाराम की तरह कुछ ना कुछ सीखते-आजमाते रहने की हिम्मत और हसरत होनी चाहिए। न जाने कौनसा हुनर उनकी किस्मत को चमका दे।

लहरी हमारा गुरु है

12 वर्ष की उम्र में घर पर बिना बताए ही लहरी लाल ने स्कूल की दहलीज लांघकर दोस्तों के साथ गुजरात के गांधीनगर की राह पकड़ ली इसी कारण वह पांचवीं कक्षा तक ही पढ़ पाया। दोस्त कैंटीन का काम करते थे पर लहरी को रेलवे की उसी कैंटीन में जूटे बर्तन साफ करने का काम मिला। रहने और खाने की व्यवस्था भी वहीं हो गई थी। मजदूरी के 100 रुपए भी मिलते थे। इस कैंटीन में लहरी लाल ने अगले चार महीने तक यही काम किया।

उदयपुर की गोगुन्दा तहसील की काछवा पंचायत के नीमच माता खेड़ा फला का लहरी पढ़ तो नहीं पाया पर वह था बड़ा ही सतर्क और जिज्ञासु। अपना काम

48-

करते-करते रसोई के दूसरे कामों को भी वह समझने लगा था। चार महीने बाद उसे रसोई में सब्जी काटने का काम मिला। छह माह के अन्तराल से पगार भी बढ़ती गई। दस माह बाद लहरी पहली बार गांधीनगर से घर आया। तब लहरी को एकमुश्त 900 रुपए मिले। कुछ दिन घर रहने

के बाद वह फिर गांधीनगर लौट गया। वहां रसोई में हैल्पर के काम के साथ ही एक साल तक वेटर का काम भी करता रहा। इसके बाद वह इसी होटल में खाना पकाने का काम करने लग गया। इस तरह एक ही होटल में उसने सात साल तक काम किया। इस बीच लहरी को 1200 रुपए महीना पगार मिलने लग गई थी।

शुरुआती प्रवास के बारे में लहरीलाल कहता है, “गांधीनगर में पहले-पहले अजीब सा लगता था। खाना समय पर नहीं मिलता, कभी जल्दी उठना पड़ता, तो कभी देर से भी सोना पड़ता। घर भी वापस नहीं आ सकता था, क्योंकि बिना बताए घर से भाग आया था इसलिए कुछ कमाकर ही लौटना चाहता था।”

सन् 1997 में लहरी लाल को शादी करने गांव आना पड़ा। शादी के बाद वापस गांधीनगर लौटने का विचार लहरी टालता रहा और यों पूरा एक साल बिता दिया। इस दौरान वह ठाला नहीं था गांव में खेती व अन्य घरेलू कार्य करता रहा। सन् 1998

में फिर से गांधीनगर जाने का उसने मन बनाया लेकिन इस दौरान उसकी जिंदगी में दो ऐसे हादसे हुए जिनकी कल्पना भी नहीं की होगी। लहरीलाल का 6 माह का बच्चा बीमारी के चलते चल बसा। बच्चे की मौत के पन्द्रह दिन बाद ही लिवर की बीमारी के कारण उसकी पत्नी भी चल बसी। इन घटनाओं से लहरी को सदमा लगा, लेकिन हिम्मत करके इस सदमें से उसने उबरने की कोशिश की।

वर्ष 1999 में लहरी चाटियाखेड़ी गांव के चिमनलाल के संपर्क में आया। यही चिमनलाल आगे चलकर लहरी के लिए अहम् व्यक्ति साबित हुआ जिसकी वजह से लहरी सफलता हासिल कर पाया। शुरुआत में चिमनलाल के संपर्क में आने पर लहरी उनके साथ रिलायंस कम्पनी गया। यहां चिमनलाल पहले से रसोई ठेकेदार थे। उन्होंने लहरी को भी वहीं कैंटीन में काम पर लगा दिया। चिमनलाल के साथ लहरी के अलावा पांच लोग और थे। कैंटीन में लहरी को 1400 रुपए मासिक पगार मिलने लगी। डेढ़ साल बाद ही लहरी की पगार बढ़ाकर 2000 रुपए कर दी गई।

रिलायंस की कैंटीन के बारे में लहरी कहता है, “वहां कार्य व्यवस्थित था। खाना समय पर मिलता, समय की भी कोई पाबन्दी नहीं थी। मजदूरी भी ठीक मिली।” डेढ़ साल तक कैंटीन में काम करने के बाद सन् 2000 में उसे यह काम छोड़ना पड़ा क्योंकि चिमनलाल का कम्पनी से दो साल का ही अनुबंध था। लहरी इसी अनुबंध के माफत कैंटीन में काम कर रहा था। इस बीच लहरी ने दूसरी शादी भी की।

49-

चिमनलाल ने लहरी के लिए राजकोट में दूसरा कार्य देख लिया था। दस

दिन घर रुकने के बाद लहरी फिर से काम करने राजकोट पहुंच गया। इस बार चिमन ने लहरी से और आदमी भी साथ लाने को कहा। लहरी अपने साथ चार आदमियों को लेकर गया। इनमें उसके गांव के दो लोग गणेश व देवीलाल भी थे। लहरी को राजकोट के लिमड़ा चौक स्थित एडीगो रेस्टोरेन्ट पर काम मिला। लहरी को यहां कुकिंग ड्रेस भी मिली। अब लहरी के रहन-सहन में बदलाव आने लगा था।

लहरी ने अब तक रसोई से संबंधित काफी कुछ सीख लिया था। बर्तन साफ करने वाला लहरी अब तक रसोइया बन गया था। चिमनलाल उसके काम से प्रभावित था, उसने लहरी को कैंटीन से हटाकर पर्यटकों को लेकर जाने वाली बसों के साथ जोड़ दिया। चिमनलाल किसी एजेंट के माध्यम से बस यात्रियों के खाने का ठेका लेता और लहरी को खाना बनाने बस में पर्यटकों के साथ भेज देता। लहरी की इस प्रकार की अपनी पहली 18 दिन की यात्रा राजकोट से वैष्णोदेवी तक की। इस दौरान खाना बनाने वाली टीम में चार लोग और थे। कैंटीन से निकलकर इस तरह का काम करना

पहले तो लहरी को अजीब सा लगा। शुरुआती दौर में उसे थोड़ा भय भी लगा, आखिर इतने दिनों तक एक ही बस में सवार होकर जगह-जगह की यात्रा जो करनी पड़ती। लेकिन कुछ दिनों में ही यह कार्य उसकी आदत का हिस्सा बन गया।

महज एक यात्रा के बाद ही लहरी को विश्वास हो गया कि वह इस तरह का काम

50-

सीधे खुद लेकर कर सकता है। लिहाजा उसने चिमनलाल का साथ छोड़ दिया। लहरी की किस्मत यहीं से चमकना शुरू हो गई। डूंगरपुर से रवाना होकर चारधाम की यात्रा करने वाली बस पर लहरी को अपना पहला काम मिला। यह यात्रा 74 दिन की रही। लहरी ने अपने साथ एक बर्तन

साफ करने वाले व्यक्ति के अलावा किसी सहायक को नहीं रखा। लहरी ने 100 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से बस यात्रियों के साथ काम किया। आने-जाने का किराया एजेंट ने स्वयं दिया। लहरी जब चिमन के साथ था तो उसे 200 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती थी, लेकिन वहां ज्यादा समय के लिए काम नहीं मिलता था। यहां कुल 74 दिन की यात्रा के लिए लहरी को सात हजार चार सौ रुपए मिले, पर यह पैसा उसे एकमुश्त नहीं मिला। पूरा हिसाब करने में लगभग तीन-चार महीने का समय लग गया। लहरी कहता है, “पूरा काम करने के बाद भी जब पैसा पूरा एक साथ नहीं मिलता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता है।”

लगातार 6 साल तक लहरी उसी एजेंट के साथ काम करता रहा। जब भी कोई पर्यटक बस चलती लहरी को काम मिल जाता। वह यात्रियों को अपने हाथों से स्वादिष्ट खाना पकाकर खिलाता। सामान्यतः साल में 3-5 बसों में इस प्रकार लहरी को काम मिल जाता। यह काम भी साल में दो बार पर्यटन महीनों में अप्रैल-मई व अक्टूबर-दिसम्बर तक मिलता। बाकी खाली बचे समय में लहरी स्थानीय शादी समारोह में खाना बनाता है।

वर्तमान में लहरीलाल एजेंट से सीधे काम लेने लगा है। लहरी एक दिन के 750 रुपए तय करके काम लेता है। बस पर किए जाने वाले इस काम के लिए उसने दो आदमी और रख लिए हैं जिन्हें वह क्रमशः 200 व 150 रुपए प्रतिदिन देता है। बाकी पैसा लहरी के पास बच जाता है। यानि एक दिन में 400 रुपए की कमाई लहरी आसानी से कर लेता है। कभी-कभी तो लहरी को खुद भी यात्रा पर जाना नहीं पड़ता और दूसरे मजदूरों को ही वह बस के साथ भेज देता है। अर्थात् घर बैठे ही लहरी को अब एजेंट के माध्यम से पैसा मिल रहा है। उसे जब समय मिलता है वह गुजरात के ईडर, गांधीनगर, राजकोट, सुरेन्द्रनगर इलाकों में होने वाले शादी समारोह में भी खाना बनाते

पहुंच जाता है। वहां लहरी 200-300 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से आमदनी कर लेता है।

इस कार्य में लहरी को अन्य लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा के दौर से भी गुजरना पड़ता है। लहरी 750 रुपए प्रतिदिन से पैसा लेता है पर दूसरे टेकेदार 600-650 रुपए तक ले लेते हैं। फिर भी लहरी इससे विचलित नहीं होता और कहता है, “काम पूरा करूंगा और काम की गुणवत्ता से कभी समझौता नहीं करूंगा।”

इतने सालों में लहरी ने लोगों के बीच अपनी अच्छी छवि बना ली है। इसी छवि के चलते लोगों से उसके संपर्क भी अच्छे हैं और उसे घर बैठे-बिठाए ही काम मिल जाता है। लेन-देन के मामलों में भी उसे अपना पैसा आसानी से मिल जाता है। आस पड़ौस के लोग उससे राय मशविरा लेते हैं।

इस सामाजिक व आर्थिक तरक्की के चलते लहरी का परिवार जोकि सन् 2005 से पहले केलू के कच्चे मकान में रहता था, आज खुद के पक्के मकान में रहता है। यह मकान इंदिरा आवास योजना से स्वीकृत हुआ था, जहां से उसे 25 हजार रुपए मकान के लिए मिले थे और लहरी ने बाकी पैसा अपनी जमा पूंजी से लगाया। अगर लहरी की बात मानें तो उसने अपने मकान को बनाने में 1.75 लाख रुपए खर्च कर दिए। फिलहाल मकान का पूरा काम करवाना ही उसकी पहली प्राथमिकता है। फर्श को टाइल से जोड़ने के कारण अभी तक कच्चा छोड़ रखा है। पूरे फले में लहरी का ही अकेला मकान है जिसमें शौचालय व स्नानघर बने हैं। घर में सभी अन्य मूलभूत सुविधाएं भी उपलब्ध हैं।

लहरीलाल ने सन् 2005 में साझे में 1.25 लाख रुपए लगाकर एक जीप भी खरीदी थी। लहरी ने उस जीप को सायरा-गोगुन्दा मार्ग पर सवारी गाड़ी के रूप में साझेदार के साथ मिलकर चलाया। इस प्रकार फरवरी 2007 तक जीप नियमित चलती रही। पर फरवरी 2007 में इस गाड़ी से किसी मोटरसाइकिल सवार को टक्कर लगी, जिससे गाड़ी थाने में जब्त हो गई। जैसे-तैसे गाड़ी को पुलिस से छुड़वाकर लहरी ने बेच दिया।

लहरी के परिवार में उसकी एक साल की लड़की भी है, जिसकी

परवरिश में लहरी कोई कसर नहीं छोड़ना चाहता। लहरी सामाजिक रूप से भी काफी जागरूक हो गया है। उसने अपनी लड़की को सभी आवश्यक टीके लगवा दिए हैं। पल्स पोलियों का जब भी अभियान होता है लहरी अपनी बच्ची को पोलियों की दवा पिलाना नहीं भूलता। घर चलाने में लहरी की पत्नी मनोहरी बाई का भी सहयोग काफी

51-

रहता है। रोजगार गारन्टी कार्यों में मनोहरी बाई जाती है।

लहरी के बड़े भाई पन्नालाल कहते हैं, “लहरी का सहयोग हमारे परिवार में बराबर रहता है। आर्थिक रूप से भी मदद मिलती है। हम चार भाइयों में लहरी ही वह पहला सदस्य है जो रसोई का काम कर रहा है।”

लहरी को इस बात की खुशी है कि उसने अपने ही गांव के देवीलाल व गणेश को साथ ले जाकर काम सिखाया। ये दोनों आज रसोई कार्य में मिस्त्री बन गए हैं। नीमच माता खेड़ा निवासी देवीलाल गमेती कहता है, “मैंने भी 12 साल की उम्र में अपने काम की शुरुआत माउंट आबू में एक पान की दुकान पर रहकर की थी। एक साल बाद लहरी ने ही मुझे अपने साथ राजकोट के एडिगो रेस्टोरेन्ट में काम पर लगाया। मैंने पांच साल तक काम किया। लहरी अपने काम में काफी मेहनती है। उसने मुझे भी काम सिखाया। एक साल पहले लहरी ने पर्यटक बस पर भी मुझे बीस दिनों के लिए अपने साथ रखा।”

लहरी के दूसरे साथी गणेश लाल का कहना है, “लहरी हमारा गुरु है। दस साल पहले मुझे लहरी ने अपने साथ काम पर लगाया था। काम सही न करने पर लहरी मुझे डांटता था। तब मुझे गुस्सा आता, घर आने का मन करता, लेकिन लहरी मुझे मनाकर काम करने के लिए हौसला बढ़ाता रहता। उसके साथ रहकर ही मैंने आज स्वयं अलग से रसोई कार्य ठेके पर लेता हूं।”

नीमच माता खेड़ा में गमेती समाज के लगभग 30-35 परिवार हैं। इन सब परिवारों में लहरी, देवीलाल व गणेश ही ऐसे तीन हैं जो रसोई कार्य से जुड़े हैं। रसोई कार्य के बारे में देवीलाल व गणेश ने बताया कि इस कार्य में कोई विशेष दिक्कत नहीं है। बस काम करने वाला होना चाहिए। अगर मन लगाकर काम करोगे तो पैसा भी अच्छा मिलेगा। हालांकि कभी-कभार कुछ मुश्किलें जरूर आती हैं, कभी चूल्हे पर खाना बनाना पड़ता है। इसके लिए हमें लकड़ियां भी जंगलों से लानी पड़ जाती हैं।

पिछले दो महीनों से लहरी घर पर ही आया हुआ है। फिलहाल वह खेती कार्य में व्यस्त है। खाली समय में रोजगार गारन्टी कार्यों में मेट का काम भी कर लेता है। उसने अक्टूबर तक गुजरात जाने की योजना बना रखी है।

मजदूरी नहीं करेंगे हमारे बच्चे

“भले ही गांव में रहकर मजदूरी करनी पड़े। मिट्टी की परात भरकर डालनी पड़े, लेकिन मैं दूसरे श्रमिकों को हमाली का काम ना करने की सलाह दूंगा। मैंने अपनी पूरी जिंदगी हमाली का काम करते बिता दी, लेकिन अब किसी को इस कार्य में आने के लिए नहीं कहता।” यह मत है गोगुन्दा तहसील के ओबरा कलां निवासी, 48 वर्षीय राधुलाल मेघवाल का।

आज भले ही राधुलाल दूसरे लोगों को अपना काम न अपनाने की सलाह देता हो, लेकिन सच्चाई यही है कि हमाली का काम करते-करते ही राधुलाल ने अपने परिवार को आगे बढ़ाया। अपने भाइयों का घर बसाया और तीन बेटियों की शादी की। अपना मकान भी पक्का बनाया। आज ओबरा कलां के 30-35 मेघवाल घरों में चार लोग ही ऐसे बच्चे हैं जो हमाली के काम से जुड़े हैं। इनमें राधुलाल भी एक है।

तीन भाइयों में सबसे बड़े राधुलाल का जन्म सन् 1959 में ओबरा कलां में ही हुआ। तब उसके पिताजी अहमदाबाद में लॉरी पर अनाज व अन्य सामग्री की बोरियां लादकर ले जाते थे। ओबरा कलां में राधुलाल के पिता ही वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आजीविका के लिए गांव से पलायन कर अहमदाबाद जाना शुरू किया।

राधुलाल ने दो कक्षा पास करने के बाद ही अपनी स्कूली जीवन की यात्रा पूरी कर ली। सन् 1970 में स्कूल छोड़ा और पिता के साथ अहमदाबाद की राह पकड़ी। उस समय राधुलाल की उम्र 10 वर्ष की थी। पिता ने इन्हें अहमदाबाद में भुजिया हाउस में काम पर लगा दिया। इस होटल में 20 रुपए की मासिक पगार पर राधुलाल कप प्लेट धोने का काम करने लगा। पिता ने अहमदाबाद में किराए पर मकान ले रखा था, लेकिन मकान होटल से दूर होने के कारण राधुलाल होटल में रहता। पिता समय मिलने पर राधुलाल को देखने आ जाते।

एक साल तक बर्तन धोने का काम करते-करते, धीरे-धीरे राधुलाल भुजिया नमकीन बनाना भी सीख गया और इस काम में अन्य लोगों का हाथ भी बंटाने लगा। इससे उसकी पगार भी बढ़ी। राधुलाल ने भुजिया हाउस में चार साल

53-

तक काम किया। जब उसने यहां से काम छोड़ा तब उसको 400 रुपए महीना पगार मिलती थी। राधुलाल के अनुसार, “उस समय पिताजी के साथ दो और श्रमिक काम करने वाले थे। अपनी कमाई में से पिताजी को भी हिस्सा देना होता था। इसलिये पिता ने सोचा क्यों न दूसरों की बजाय अपने बेटे को ही अपने साथ रख लूं। यह वो वक्त था जब मैं लॉरी पर हमाली कार्य से जुड़ा।”

राधुलाल अब पिता के साथ लॉरी पर काम करने लगा। सन् 1979 में उसके पिता अपने बीमार भाई से मिलने गांव आए। गांव में सर्प काटने से उनकी अकस्मात् मृत्यु हो गई।

54-

उस समय राधुलाल अहमदाबाद में ही था। सूचना मिलने पर अपने गांव वापस आने में उनको चार दिन लग गए, जिससे वह अपने पिता के अंतिम दर्शन भी नहीं कर पाए। पिता के आकस्मिक निधन से लॉरी व पूरे परिवार की जिम्मेदारी राधुलाल के कंधों पर आ पड़ी। भारतीय

खाद्य निगम (एफ.सी.आई.) में चलने वाली लॉरी राधुलाल ने संभाल ली। उन्हें महीने में पन्द्रह दिन काम मिलता, जब माल की सप्लाई करनी होती तब ही काम आता। इसीलिए राधुलाल ने एफ.सी.आई. कम्पनी छोड़कर बाजार की तरफ कदम बढ़ाया और वहीं लॉरी चलाने का काम करने लगा। जान पहचान के चलते उसे कालपुर मण्डी में काम मिल गया, और वहीं हमाली का काम करने लगा। उसे मजदूरी, लॉरी के चक्कर के अनुसार मिलती, फिर भी वह दिनभर में लगभग 70-80 रुपए कमा लेते। इस प्रकार राधुलाल ने चार साल तक काम किया। इस बीच ऐसा समय भी आया जब उन्हें लॉरी बेचनी पड़ी और कंधों पर ही बोरी लादकर हमाली का काम करना पड़ा। तब काम छोड़ने का कारण जानने पर राधुलाल कहते हैं, “बाबूजी, यहां मुझे अनपढ़ रहने का पछतावा महसूस हुआ। मण्डी में पढ़े लिखे लोगों को काम मिलता था। माल के जो कार्टन आते, उन पर अंग्रेजी में नाम लिखा आता जो मैं पढ़ नहीं पाता। माल को पहचानना मुश्किल होता था। यहां से काम छोड़ने के बाद कुछ दिनों तक फिर से लॉरी का काम पकड़ा। मौसम और बाजार के अनुरूप काम मिलता लेकिन नियमित काम कभी नहीं मिला।”

तब राधुलाल अहमदाबाद के असलाली बाजार में पहुंचा। जहां उसने यूरिया कम्पनी में सात साल तक हमाली का काम किया। जितना काम होता उतना ही पैसा मिलता। महीने के हजार से बारह सौ रुपए की कमाई हो जाती। इस जगह राधुलाल ने लम्बा समय गुजारा, लेकिन नियमित काम फिर भी नहीं मिला।

पिछले चार साल से राधुलाल अहमदाबाद नहीं गया है क्योंकि पिछली बार राधुलाल हमाली करते समय बोरी लेकर चढ़ते हुए फिसल गया था जिससे उसका दाहिना कंध

गा चोटग्रस्त हो गया। तब से वह भारी वजन कम ही उठाता है। कभी-कभार ऊंझा मण्डी में जरूर काम करने चला जाता है। फिलहाल राधुलाल घर पर रहकर गोगुन्दा के पास चल रहे राष्ट्रीय राजमार्ग (फोर लेन) निर्माण क्षेत्र में काम कर रहा है। छह माह तक वहां चौकीदारी की, अब पिछले 6 माह से फोर लेन पर डामर मशीन चलाने का काम कर रहा है। शाम को 8 से सुबह 8 बजे तक यह काम करना होता है। चौकीदारी में 1500 रुपए मिलते थे जबकि इस काम के लिए उसे 2200 रुपए महीना मिल रहा है।

राधुलाल का पड़ोसी डल्ली चंद मेघवाल कहता है, “राधुलाल हम लोगों के साथ रहकर ही अहमदाबाद में हमाली का काम करता था। उसे कंधे पर चोट की वजह से काम छोड़ना पड़ा। हमने पूरी कोशिश की थी कि राधुलाल को अहमदाबाद में ही उसी कंपनी में कोई दूसरा काम मिल जाए लेकिन राधुलाल के अनपढ़ होने की वजह से दूसरा काम मिल नहीं पाया।”

राधुलाल खुद पढ़ा लिखा नहीं था लेकिन अपने बच्चों को उसने अच्छी शिक्षा दिलवाई। बड़े भाई का फर्ज अदा करते हुए भाइयों की शादी कर उनका घर बसाया। समाज के रीति-रिवाज के अनुसार उसने अपना मकान छोटे भाइयों को दिया और खुद अलग से अपना पक्का मकान बनाया। राधुलाल ने अपनी तीन बेटियों की भी शादी की। इतना सब कुछ बाहर रहकर जो कुछ कमाया उसी से तो किया। राधुलाल की माताजी भंवरी बाई कहती है, “मेरे तीन बेटे हैं, लेकिन दो बेटों ने अपना अलग-अलग घर बसाकर हमसे नाता तोड़ लिया। एक मुम्बई में जम गया तो दूसरा अहमदाबाद में। गांव में अब राधु ही मेरा सहारा है। पिताजी के निधन के बाद इसने ही मुझे व मेरे परिवार को संभाला है।”

राधुलाल की सबसे छोटी लड़की सन्तो कहती है, “हमारे पापा ने हम तीनों बहनों को पढ़ाया। मेरी बड़ी बहन देवली व छोटी बहन मीना को भी आठवीं कक्षा तक पढ़ाया और मुझे सातवीं तक। पापा हम तीनों के साथ एक सा व्यवहार करते थे। सबको समान रूप से चाहते थे। मुझे खुशी है कि पापा की वजह से मैं पढ़ पाई।”

अपने प्रवास के बारे में राधुलाल कहता है, “अगर नियमित काम मिलता तो परिवार को भी साथ रख लेता, लेकिन

हमारा एक पैर अहमदाबाद रहता तो दूसरा पैर गांव में। दोनों ही तरफ तालमेल बैठकर चलना पड़ता।” राधुलाल के जीवन में दो बार ऐसे अवसर भी आए जब उसे अपने काम व प्रवास से घृणा हुई। पहला तब जब पिताजी के देहांत के वक्त अहमदाबाद से गांव आते-आते जब उसे चार दिन बीत गए। दूसरी बार, लगभग छह

55-

साल पहले ही उनका 4 साल का बीमार बेटा गांव में अचानक गुजर गया। उस वक्त भी राधुलाल अपने परिवार से दूर ही था। राधुलाल कहता है, “पिता के अंतिम दर्शन से वंचित रहा, बेटे के पास रहता तो इलाज करवा देता। ऐसा भी क्या काम जो परिवार से दूर कर दे।” राधुलाल का कहना सही है लेकिन परिवार की जिम्मेदारियां ही परिवार से दूर करती हैं।

राधुलाल ने अपने जीवन में कभी भी शराब व अन्य मादक पदार्थों का सेवन नहीं किया।

इस बारे में उसका गांव में मेघवाल घर हैं, लेकिन सभी से दूर रहते हैं।” सेवन करने वालों “पचास-साठ में खर्च करने की कुछ सामग्री लाकर

56-

कहना था, “हमारे समाज के 30-35 शराब व धूम्रपान राधुलाल शराब से कहता है, रुपए शराब पीने बजाय बच्चों को दो।”

राधुलाल के एक लड़का है जो अभी पांचवीं में पढ़ रहा है। राधुलाल अपने व परिवार के अन्य बच्चों से कभी भी मजदूरी नहीं करवाएगा। उसका कहना है, “चाहे कुछ भी काम करो लेकिन मजदूरी कभी मत करना।”

सुथारी के काम में बहुत पैसा है

उदयपुर जिले की गोगुन्दा तहसील के करदा निवासी 26 वर्षीय राधेश्याम सुथार की इच्छा थी कि वह इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र में काम करे लेकिन जब से होश संभाला, तब से घर में लोगों को फर्नीचर के काम से ही जुड़ा पाया। उनका पूरा परिवार सुथारी का पुश्तैनी कार्य करता था। परिवार की इच्छाओं व पुश्तैनी धंधे को ही आगे बढ़ाने के लिए राधेश्याम को अपनी इच्छाओं का गला घोटना पड़ा और सुथारी कार्य के लिए पिता की अंगुली पकड़ ली। पिता के सानिध्य में रहकर राधेश्याम ने फर्नीचर कार्य से जुड़ी हर बारीकी को सीखा। आज राधेश्याम मुम्बई में महीने के 6 हजार रुपए कमाने वाला सफल मिस्त्री है। लगभग 500 घरों की आबादी वाले करदा गांव में महज दो ही परिवार सुथार समाज के हैं और इनमें भी राधेश्याम ही आज सफलता की कसौटी पर खरा उतरा है।

राधेश्याम का जन्म सन् 1981 में करदा गांव के तुलसीदास सुथार के परिवार में हुआ। उसने अपनी स्कूली शिक्षा सन् 1998 में पूरी की। स्कूली जीवन तक घर के कार्य के माहौल को देखते हुए राधेश्याम भी थोड़ा बहुत सुथारी का काम जानने लगा था।

फर्नीचर काम में काम की पहचान उसे हो मिलने पर वह अपने साथ थोड़ा-बहुत लेकिन कभी यह नहीं कार्य को उसे कभी लिए भी अपनाना

57-

आने वाले औजारों गई थी। समय दादा व पिता के काम भी कर लेता सोचा था कि इस आजीविका के पड़ेगा। दसवीं में

अच्छे नम्बरों से पास ना होने की वजह से परिवार वालों को भी मौका मिल गया और वे उस पर काम के लिए दबाव डालने लगे। राधेश्याम को भी लगा कि अब पढ़ाई की बजाय काम करना ही बेहतर होगा। यही सोचकर उसने हालात से समझौता करते हुए पुश्तैनी धंधे की राह पकड़ ली और पिताजी के साथ फर्नीचर कार्य से जुड़ गया।

राधेश्याम के पिताजी सन् 1993 से बरवाड़ा में एक फर्नीचर की दुकान चला रहे थे। राधेश्याम ने एक साल तक पिताजी के साथ रहकर काम सीखा। वह पिताजी के साथ ज्यादा दिन तक टिककर कार्य नहीं कर पाया। उसके पिता को अंदाजा हो गया कि बेटा अब खुद का कुछ काम करने लायक हो गया, इसलिए उसको बाहर भेज दिया

जाए। इससे कुछ सीखने को भी मिलेगा और वह बाहर रहकर बाहरी दुनिया भी देख पाएगा। यही सोचकर राधेश्याम के पिताजी ने उसे राजस्थान के बाहर भेजने का फैसला कर लिया। राधेश्याम ने सबसे पहले अहमदाबाद पलायन किया, जहां उसके फूफा काम करते थे। उनके संपर्क में आने से राधेश्याम को अहमदाबाद में एक फर्नीचर की दुकान पर काम मिल गया। राधेश्याम ने वहां चार माह काम किया। पर दादाजी के देहांत की वजह से उसे बीच में ही गांव वापस आना पड़ा।

चार माह के इस प्रवास के बारे में राधेश्याम कहता है, “शुरु में अजीब सा लगता था। मन नहीं लगता। घर पर ही काम करने की इच्छा होती। दादाजी के निधन के कारण वापस आना पड़ा। बाद में अहमदाबाद जाने का कई बार कार्यक्रम बनाया लेकिन

58-

टालते-टालते काफी समय निकाल दिया।” चार माह काम करने के लिए राधेश्याम को तीन हजार रुपए इकट्ठे मिले थे, लेकिन वह पैसे उसकी बजाय उसके पिताजी को ही मिले।

राधेश्याम करदा में फिर से पिता के साथ दुकान पर कार्य करने

लगा और सन् 2003 तक वह इसी दुकान पर ही काम करता रहा। पिता-पुत्र को एक साथ काम करते-करते काफी साल हो गए थे, लेकिन पैसा नहीं जुड़ पा रहा था। एक तो उधारी की मार और दूसरी ओर घर का खर्च न निकलना। ऐसे में दोनों को महसूस हुआ कि क्यों ना अलग-अलग काम करें जिससे कमाई भी अलग-अलग आए। राधेश्याम भी अब फर्नीचर कार्य में निपुण हो गया था। हेल्पर की बजाय अब वह मिस्त्री बन गया था। राधेश्याम ने इस बार मुम्बई जाने का फैसला किया, जहां उसके दो साले मांगीलाल व नारायण पहले से ही फर्नीचर व्यवसाय के ठेकेदार थे। उसे वहां काम मिलने में कोई दिक्कत नहीं हुई। मुम्बई जाते ही उसे 4 हजार रुपए महीने की पगार पर काम मिल गया। लगातार तीन साल तक मुम्बई के खार इलाके में राधेश्याम ने काम किया। पगार भी अब 6 हजार रुपए मिलने लगी और हर साल 500 रुपए बढ़ते गए।

इन तीन सालों में मुम्बई रहकर राधेश्याम ने न केवल पैसा कमाया बल्कि अपनी छवि भी बनाई। रिश्तेदारों के साथ काम करके भी व्यवहार बनाए रखा। इस अवधि में उसका व्यापार से जुड़े कई लोगों से संपर्क हुआ। अपने प्रवास के बारे में राधेश्याम कहता है, “कहने को तो मैंने घर से ही काम सीखा, लेकिन जो अनुभव बाहर रहकर हुआ, वह घर पर नहीं होता। दुकान पर भी मैंने लम्बा समय गुजारा। गांव में कुछ नया सीखने को नहीं मिलता। मुम्बई जाने से प्लाई का काम करने को मिला। अच्छे से अच्छा

फर्नीचर बनाने का मौका मिला।”

पिछले दो महीने से मुम्बई में काम ना होने से राधेश्याम घर पर ही है। पर यहां भी वह अपने पिताजी के साथ मिलकर कुछ न कुछ काम कर ही रहा है। राधेश्याम के पिता तुलसीराम सुथार ने बताया, “अगर बेटे को अलग काम करने मुम्बई नहीं भेजता, तो हमारा खर्चा नहीं चल पाता। जबसे राधेश्याम मुम्बई काम करने लगा है तब से परिवार की स्थिति में सुधार आया है। उसके मुम्बई जाने से परिवार को फायदा हुआ, पैसा इकट्ठा मिलने लगा।”

आज राधेश्याम सक्षम हो गया है, अपनी बहन की शादी में उसने पिता को 50 हजार रुपए दिए। हाल ही में उसने बरवाड़ा में प्लाट भी खरीदा है। इसके अलावा राधेश्याम ने अपने घर के ऊपर एक मंजिल का और निर्माण करवा लिया है। रोजमर्रा में काम आने वाली सभी सुविधाएं राधेश्याम के घर मौजूद हैं। राधेश्याम अपने 3 वर्षीय लड़के-संतोष को बेहतर शिक्षा एवं परवरिश दिलाएगा। वह कहता है, “मैंने तो अपने पुश्तैनी धंधे को आगे बढ़ाया, लेकिन संताष को इस धंधे में नहीं धकेलूंगा।”

मुम्बई जाने वाले अन्य श्रमिकों को राधेश्याम की सलाह है कि एक ही जगह रुककर काम करें तो कोई भी काम मुश्किल नहीं। मुम्बई में रहते हुए किसी से बहसबाजी करने से बचें। ट्रेनों में सफर करते हुए भी सावधानी बरतें। अपने व्यवसाय के विषय में वह कहता है, “सुथारी काम में पैसा बहुत है।

जोधपुर नहीं जाता तो...

आज से पच्चीस साल पहले मैं जोधपुर नहीं जाता तो खेती से ही जुड़ जाता। ये बाहर निकलने का ही नतीजा है कि मैंने अपने शौकिया तौर पर शुरू किए गए काम को आगे बढ़ाया और उसी में धंधा जमाया।" बालकृष्ण बरवाड़ा में पिछले 6 वर्षों से इलैक्ट्रॉनिक्स उपकरणों की मरम्मत व फोटोग्राफी से संबंधित दुकान चला रहे हैं।

60-

बालकृष्ण ने अपने काम की शुरुआत पेट्रोल पम्प से की और इस तरह जो भी पैसा कमाया, उसे अपने शौक में लगाकर उसने भविष्य के काम की आधारशिला रखी। गांव से बाहर पलायन करके जो कुछ उसने देखा, सीखा व कमाया, उसकी जिंदगी के लिए वही अहम् साबित हुआ।

पैंतालीस वर्षीय बालकृष्ण वैष्णव उदयपुर जिले की गिरवा तहसील के कठार गांव में रहते हैं। बरवाड़ा में दुकान जमाने से पहले उन्होंने न जाने कितने ही काम किए लेकिन ये सभी काम इलेक्ट्रॉनिक से जुड़े हुए थे। फोटोग्राफी के साथ-साथ उन्होंने पेट्रोल पम्प पर भी काम किया। गांव में केबल ऑपरेटर का काम करने के साथ उन्होंने अलग-अलग गांवों में जाकर वीडियो पर लोगों को महाभारत व रामायण भी दिखाई। कभी वे संविदा (ठेके) पर अध्यापक बने तो कभी सहकारी समिति में व्यवस्थापक भी। एक समय वह भी आया जब राजनीति में कदम रखते हुए वे वार्डपंच भी बने। इन सबके बीच भी उन्होंने अपने फोटोग्राफी के शौक को जारी रखा और आज बरवाड़ा में फोटो की दुकान चला रहे हैं।

बालकृष्ण वैष्णव का परिवार नाथद्वारा रहता था। उनके पिताजी— भगवान दास वैष्णव पुजारी थे। कठार गांव में स्थित जैन मंदिर में पूजा की जिम्मेदारी को निभाने के लिए लगभग 55 साल पहले, पिताजी, नाथद्वारा से कठार गांव आ गए। बालकृष्ण का जन्म कठार गांव में 11 दिसम्बर 1963 को हुआ।

अपनी स्कूली शिक्षा बालकृष्ण ने कठार गांव से की। ग्यारहवीं कक्षा केलवाड़ा के एक विद्यालय से पूरी की। सन् 1981 तक इनकी स्कूली शिक्षा पूरी हो गई थी। उन्होंने कॉलेज में नियमित पढ़ाई करने की बजाय स्वयंपाठी के रूप में परीक्षा देना ही मुनासिब

समझा, क्योंकि एक तो वे पढ़ाई में थोड़ा कमजोर थे। दूसरी ओर घर की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी और आगे पढ़ाई हेतु उदयपुर के एक निजी महाविद्यालय में स्वयंपाठी छात्र के रूप में परीक्षा फॉर्म भरा।

बचपन से बालकृष्ण अपनी शर्तों पर जीते, कभी भी इनके परिवार ने इनके रहन-सहन व जीवन में अनावश्यक दखल नहीं दिया। प्राइवेट पढ़ाई कर परीक्षा देने का निर्णय इनका ही था। उस समय इनकी उम्र लगभग 20 वर्ष थी। इनको लगा कि क्यों न पढ़ाई के साथ-साथ कुछ काम भी कर लिया जाए, जिससे खर्चा भी चलता रहे। यही सोचकर बालकृष्ण ने काम करने का फैसला किया।

सन् 1982 में बालकृष्ण अपने गांव के ही रूपसिंह राजपूत के संपर्क में आए। रूपसिंह जोधपुर पावटा चौराहे पर पेट्रोल पम्प के मैनेजर थे। बालकृष्ण ने इनके सामने अपनी काम करने की इच्छा जाहिर की। लगभग 20 वर्ष की उम्र में बालकृष्ण गांव के सबसे पहले पलायन करने वाले व्यक्ति बने। वे रूपसिंह के साथ जोधपुर पहुंचे, जहां रूपसिंह ने उनको उसी पेट्रोल पम्प पर तीन हजार रुपए महीने की पगार पर काम पर लगवा दिया। किन्तु उनका मन तो फोटोग्राफी व इलैक्ट्रॉनिक मरम्मत का काम करने का था जिसका उन्हें बचपन से ही शौक था।

इसीलिए पेट्रोल पम्प पर काम के साथ-साथ अपनी इस प्रतिभा को भी भुनाने की कोशिश में बालकृष्ण लगे रहते। पेट्रोल पम्प पर काम का समय सुबह 6.30 से 8.00 व शाम 8.00 से 12.00 होता। रहना व खाना वहीं पर था। बचे हुए खाली समय में बालकृष्ण फोटोग्राफी करते। इलेक्ट्रॉनिक काम की जानकारी होने के कारण आस-पास के इलाकों से काम आने पर थोड़ा बहुत यह काम भी कर लेते। इससे अलग से आमदनी भी हो जाती। समय मिलने पर पढ़ाई भी करते। डेढ़ साल बाद उनकी मजदूरी तीन हजार रुपए से बढ़कर पांच हजार रुपए हो गई।

पेट्रोल पम्प पर ढाई साल तक उन्होंने नियमित काम किया। परन्तु जब भी परीक्षा का समय आता, वे जोधपुर से उदयपुर आ जाते, जिसकी जानकारी पेट्रोल पम्प के मालिक को नहीं होती। जैसे ही मालिक को जानकारी हुई, वह बालकृष्ण से खफा हो गया और बालकृष्ण को कहा कि वह या तो नौकरी करे या पढ़ाई। बालकृष्ण ने काम की बजाय पढ़ाई को ही चुना और आखिरकार उन्हें पेट्रोल पम्प पर यह काम छोड़ना पड़ा। फिर भी उन्हें इस बात की खुशी थी कि उन्होंने अपने गांव से बाहर रहकर काम का अच्छा खासा अनुभव प्राप्त कर लिया था। इस दौरान उन्होंने न केवल पैसा कमाया बल्कि वे बी.ए. के अंतिम वर्ष तक भी पहुंच गए थे।

61-

जोधपुर छोड़कर जब बालकृष्ण पढ़ाई के लिए घर आए तो उन्हें गांव आने के बाद ही काम मिल गया। तुला गांव में स्थिति माध्यमिक विद्यालय में संविदा पर उन्होंने अध्यापक का काम करना शुरू किया। वहां 400 रुपए महीने की पगार पर वे तीन महीने ही काम कर पाए। काम छोड़ने का कारण पूछने पर बालकृष्ण ने बताया, “अध्यापक की जात, कंजूस की जात। मुझे लगा कि अगर मैंने अध्यापक का काम किया, तो मेरी प्रवृत्ति भी कंजूस जैसी 3 महीने के बाद ही खैर, तब तक बालकृष्ण चुके थे। 1986 में किस्मत फिर से उन्हें रूपसिंह के माध्यम से तहसील के खींचन गांव की दुकान पर देखरेख का काम मिला। वहां 600 रुपए महीने की पगार मिल रही थी। इसी दौरान बालकृष्ण जोधपुर में जिस मालिक के साथ पहले काम करते थे, उसी मालिक ने उनसे फिर से अपने पेट्रोल पम्प पर काम करने का प्रस्ताव रखा। बालकृष्ण ने इस मालिक के व्यवहार व पुराने संपर्क के कारण केरोसीन डीलर की दुकान पर से काम छोड़ दिया। इस प्रकार यहां बालकृष्ण ने मात्र छह माह तक ही काम किया और सोजतसिटी के वाघावास में फिर से पेट्रोल पम्प पर काम करने लग गए। यहां भी 600 रुपए महीने पगार मिली। पगार बढ़ाने के लिए बालकृष्ण मालिक से बार-बार कहते भी थे, लेकिन मालिक ने कभी भी उसकी पगार नहीं बढ़ाई। बालकृष्ण ने वहां चार साल तक काम किया। काम के साथ वे फोटोग्राफी व विद्युत उपकरणों की मरम्मत का काम भी करते रहे। यह काम उन्हें आस-पास के लोगों के संपर्क से मिल जाता था।

सोजत में चार साल तक काम करने के बाद बालकृष्ण सन् 1991-92 में गांव आ गए, वहां वे सहकारी समिति के सुपरवाइजर डालचन्द श्रीमाली के संपर्क में आए। डालचन्द ने बालकृष्ण को तलादरी गांव स्थित सहकारी समिति में व्यवस्थापक के पद पर नियुक्ति दिलवा दी। बालकृष्ण ने यहां ढाई साल तक 600 रुपए महीने की पगार से काम किया, इस दौरान बालकृष्ण ने एक नया कैमरा भी खरीद लिया। सहकारी समिति का काम छोड़ने के बारे में बालकृष्ण कहते हैं, “सहकारी समिति में पैसा बेईमानी से कमाया जाता था, जो मुझे मंजूर नहीं था। लिहाजा मैंने इस तरह से पैसा कमाने की बजाय काम छोड़ना ही ज्यादा मुनासिब समझा।”

समिति में काम के दौरान ही अपने गांव के चन्द्रशेखर श्रीमाली के साथ बालकृष्ण ने साझे में ट्रेक्टर खरीदने का फैसला किया। इसके लिए उन्होंने 5 हजार रुपए चन्द्रशेखर को दिए, लेकिन चन्द्रशेखर ने उनके साथ धोखा किया और बालकृष्ण द्वारा

62-

हो जाएगी। इसलिए काम छोड़ दिया।”

विवाह सूत्र में भी बंध बालकृष्ण की जोधपुर ले गई। ही उन्हें फलोदी में केरोसिन डीलर

दिए पैसे हड़प लिए। बालकृष्ण के पास ना ही ट्रेक्टर आया और ना ही पैसा वापस मिला।

सन् 1994 में व्यवस्थापक का काम छोड़ने के बाद कठार गांव में उन्होंने केबल ऑपरेटर का काम शुरू किया। कुछ जमा पूंजी व ब्याज पर पैसा लाकर डिश छतरी खरीदी। डिश छतरी अपने घर पर लगाकर 40 रुपए महीने से कनैक्शन देने लगे। लगातार चार साल तक यह काम अच्छा चला, लेकिन जब गांव के एक अन्य व्यक्ति ने केबल ऑपरेटर का काम शुरू कर दिया तो बालकृष्ण का धंधा मंदा हो गया। केबल व्यवसाय के साथ-साथ वे आउटडोर फोटोग्राफी भी करते रहे। इसके अलावा बालकृष्ण ने दो साल तक गांव-गांव घूमकर वीडियो पर रामायण व महाभारत भी दिखाई। जिससे उनको रोज 200-300 रुपए की आमदनी होती। लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। अचानक एक दिन शॉर्ट सर्किट के कारण बालकृष्ण का वीडियो व टी.वी. जलकर राख हो गए। एक तरफ तो यह नुकसान हुआ, वहीं इसी दौरान उनके पिताजी भी चल बसे। ढाई-तीन महीने के अंतराल में ही बालकृष्ण के जीवन में ये सभी हादसे घटित हुए। पिताजी की मृत्यु के बाद गांव के जैन मंदिर में पूजा करने की जिम्मेदारी बालकृष्ण पर आ गई। उन्होंने छह माह तक मंदिर में पूजा कराई। कर्ज लेकर नुकसान की भरपाई की व पिताजी का मृत्युभोज भी किया। तब भी उनका केबल, फोटोग्राफी व रिपेरिंग का काम चलता रहा।

इन सब परिस्थितियों के कारण, बालकृष्ण ने एक जगह बैठकर काम करना ही मुनासिब समझा और सन् 1999 में कठार गांव में ही दुकान खोलकर उन्होंने इलेक्ट्रॉनिक का काम शुरू किया।

महीने किराए पर ली लिए उन्होंने स्टिल साथ-साथ, एक गैस महीने की कमाई से बच जाते थे। दो साल दुकान बंद कर दी। बालकृष्ण बरवाड़ा

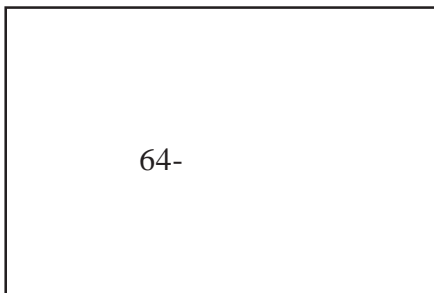
63-

दुकान 300 रुपए थी। फोटोग्राफी के कैमरा खरीदा। इसके एजेंसी भी ली। हर 2500-3000 रुपए बाद बालकृष्ण ने यह सन् 2001 में पहुंचे। बरवाड़ा में 300

रुपए मासिक किराए पर बस स्टेण्ड पर दुकान ली। यहां पर भी उन्होंने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की मरम्मत एवं विक्रय के साथ-साथ फोटोग्राफी के काम को जारी रखा। पिछले 6 वर्षों से बालकृष्ण बरवाड़ा में “कुसुम इलेक्ट्रॉनिक्स एवं फोटोग्राफी सेन्टर”, नाम से दुकान कर रहे हैं, लेकिन यहां तक पहुंचने के लिए उनको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने जहां भी काम किया अपने शौक को बनाए रखा और वही शौक आज उनकी आजीविका का प्रमुख साधन है। बाहर जाकर जो पैसा व इज्जत उन्होंने पाई वह आज इनके काम आ रही है। लगभग सात साल का उनका

जोधपुर व सोजत का प्रवास उनके लिए अहम् साबित हुआ। अपने प्रवास के अनुभव व कार्य के बारे में बालकृष्ण कहते हैं, “बाहर रहकर मैंने पेट्रोल पम्प पर काम किया। जो पैसा कमाया उनसे ही धीरे-धीरे मरम्मत के काम में आने वाले औजार व उपकरण खरीदे। अगर मैं सिर्फ़ फोटोग्राफी व इलैक्ट्रॉनिक सामानों की मरम्मत काम तक ही सीमित रहता तो शायद मुझे भी इनमें से एक काम को बीच में ही छोड़ना पड़ता। मैंने दुकान में इन दोनों कामों के अलावा अन्य काम करना भी शुरू किया। जैसे- फोटो फ्रेम बनाना, गैस एजेन्सी, बीमा एजेन्ट, ऑडियो कैसेट विक्रय, टार्च विक्रय आदि। हर इलैक्ट्रॉनिक उत्पाद की मरम्मत व विक्रय का काम मैंने दुकान में जमाया।

बालकृष्ण, राजनैतिक क्षेत्र में कदम रखते हुए सन् 1996 से 2001 तक वार्डपंच भी रहे। यह पद भी संपर्क व समाज बदौलत ही मिला। भी अपनी का गलत फायदा अपने काम पर सन् 2001 में वार्डपंच बनने के आजमाई, लेकिन 28 वोट से चुनाव हार गए।



उनको उनके में इज्जत की बालकृष्ण ने कभी राजनीतिक शक्ति नहीं उठाया और ही ध्यान देते रहे। उन्होंने दोबारा से लिए किस्मत

वर्तमान में बालकृष्ण का परिवार गांव के सम्पन्न परिवारों में गिना जाता है। इनके चार बच्चे हैं और चारों ही फिलहाल शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। सबसे बड़ा लड़का बी.ए. अंतिम वर्ष में है तो सबसे छोटी लड़की दसवीं में। अन्य दो बच्चों में एक अभी आठवीं व दूसरा सातवीं कक्षा में है। बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवाना ही बालकृष्ण के जीवन की प्राथमिकता है। बड़ा लड़का पढ़ाई के साथ-साथ बालकृष्ण के व्यवसाय में भी हाथ बंटाने लगा है। बालकृष्ण की पत्नी मीरा बालकृष्ण के घनिष्ठ मित्र, ढूंढी गांव के हरलाल जोशी कहते हैं, “मेहनत की, संघर्ष किया और अपने काम को बढ़ाता रहा... इसीलिए आज यह व्यक्ति यहां तक पहुंचा।”

सारांश

सोलह विजेताओं की जीवन-यात्राओं के दस्तावेजीकरण की यह प्रक्रिया शुरू तो की गई थी राजस्थान के प्रवासी श्रमिकों की सफलता के कारकों की पहचान के लिए पर, इस अध्ययन ने हमारे 'सफलता' के नजरिये का ही विस्तार कर डाला। इस अध्ययन को शुरू करने से पहले हम ये तो जानते थे कि सफलता केवल आर्थिक मापदंडों की गुलाम नहीं है, पर गैर-वित्तीय मापदंड, खासकर प्रवासी श्रमिकों के लिए, क्या हो सकते हैं, इस विषय में हमारी समझ, शुरुआत में धुंधली ही थी।

आज हम जानते हैं कि अपनी कार्य साधना से 12 वर्ष की आयु से ही काम में जुटा और आज अपने खुद के पक्के मकान में रहने वाला लहरीलाल ही सफल प्रवासी नहीं है, पक्के रास्तों की पहुंच से दूर, एक कमरे के कच्चे मकान में रहने वाला नोजाराम भी उन सभी प्रवासी श्रमिकों के लिए एक मिसाल है, जो व्यवसाय में मिली प्रारंभिक असफलताओं एवं समाज में उपहास का पात्र बनने के डर से नए काम में हाथ आजमाने से पीछे हटते हैं। हमारे सभी सोलह प्रवासी श्रमिक प्रायः बचपन से ही आजीविका के चक्रव्यूह में फंस गए, जिस कारण वे औपचारिक शिक्षा तंत्र से दूर हो गए, पर आज वे सभी इतने सशक्त हैं कि अपने बच्चे-बच्चियों एवं बहन-भाइयों को शिक्षित बना रहे हैं।

चाहे राधेश्याम सुथार हो या चंदूलाल, ये सफल प्रवासी श्रमिक आज अपनी बहनों के विवाह एवं भाइयों को काम दिलाने की पारिवारिक जिम्मेदारियां भी सराहनीय ढंग से वहन कर रहे हैं। पाई-पाई जोड़कर इन्होंने भौतिक संपत्ति तो जुटाई ही है, साथ ही कई अन्य बेरोजगार, युवकों को अपने साथ काम में जोड़कर ये श्रमिक आज सामाजिक मान-सम्मान तथा आशीर्वाद के पात्र भी बन गए हैं। नौकर के रूप में काम शुरू करने वाले केसर सिंह और मांगीलाल जहां आज स्वयं नियोक्ता हैं, वहीं नारूराम और भैरूसिंह ने अपने-अपने परिवारों को पुराने एवं प्रायः शोषणपूर्ण कर्जों से मुक्ति दिलाई है। यह इनकी सफलता नहीं और तो क्या है ?

अब मौलिक प्रश्न यह उठता है कि ये प्रवासी श्रमिक सफलता का तमगा कैसे जुटा पाए ? सबसे पहले तो वो कौन सी व्यक्तिगत प्रवृत्तियां एवं क्षमताएं थीं जिनके कारण ये सब अभिमन्यू आजीविका रूपी चक्रव्यूह को भेद पाए ?

लगभग सभी उल्लेखित श्रमिक जुझारू निकले, फिर चाहे वह प्रारंभिक व्यावसायिक

असफलताओं को झेलने वाला नोजाराम हो या पारिवारिक मृत्यु के असहनीय दुःख पर विजय पाने वाला लहरीलाल। किसी ने भी हार नहीं मानी और प्रवास के दौरान प्रस्तुत कठोर वातावरण को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। सुदूर इलाकों में ड्राइवरी करना भैरुसिंह के लिए कठिन तो रहा, लेकिन इस रोजगार के अवसर का भी उसने देस-परदेस की समझ बनाने एवं अपने व्यक्तित्व में निखार लाने हेतु सदुपयोग किया। कालूराम ने ईमानदारी एवं लगन से दुकान मालिक का मन तो जीता ही, साथ ही व्यावसायिक चातुर्य से अपनी मासिक पगार को भी रूपए 2500 से रूपए 8000 करवा लिया। चाहे नमकीन बनाने वाला कालूराम हो या साड़ी कटिंग करने वाला नारूराम व्यवसाय में वे डटे रहे और पूरी मेहनत से काम करते रहे। ऐसा भी नहीं कि उन्होंने केवल एक ही व्यवसाय किया। उभरती चुनौतियों एवं अवसरों को देखते हुए इन श्रमिकों ने कई व्यवसाय बदले फिर चाहे वह पशु चराने का काम हो या फल बेचने का। उन्होंने किसी काम को छोटा नहीं समझा। किसी का ठेकेदार बनने का सपना पूरा भी हो गया फिर भी उसने मिस्त्री बनकर काम करने का विकल्प भी अपने लिए खुला रखा। जहां राधेश्याम सुथार ने अपने पुश्तैनी धंधे को आगे बढ़ाया, वहीं बालकृष्ण एवं छोटूलाल गरासिया जैसे श्रमिकों ने अपने बचपन के शौक को ही एक सफल व्यवसाय का रूप दे डाला।

नाए-नाए काम सीखने की ललक एवं वर्तमान को बेहतर बनाने की अधीरता इन सभी में झलकती है। समय का सदुपयोग एवं कमाई में से बचत तथा यथोचित निवेश सभी ने किया। जुमा बामणिया ने तो स्वयं के व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु कीमती समय एवं अर्थ अर्जित कर निवेश की परिभाषा को ही अलंकृत कर डाला।

सभी उल्लेखित प्रवासियों ने सफलता का मुकाम अकेले ही हासिल कर लिया हो, ऐसा भी नहीं है। जुमा के परिवार ने उसके कारोबार में बड़ी कठिनाई से धन जमा कर लगाया। एक ओर कालूराम की पत्नी ने घर बैठकर पाजेबों में घुंघरू लगाकर अतिरिक्त धन जुटाया, वहीं दूसरी ओर कैलाश चंद के नशे के अंधेरे में खो जाने के दौर में उसकी पत्नी ने हाथ ठेला खींच-खींच कर घर की गाड़ी को चलाया। अपने हंसते-खेलते परिवार के एक हादसे में, खत्म हो जाने का सदमा क्या कालूराम अकेले झेल पाता ? बिना अपने भाई के सहयोग के क्या मनमौजी किशन सिंह एक होटल का सह-मालिक बन पाता ? शायद नहीं। अतः इन सभी ने जहां अपने हौसले एवं नेकी के बल पर आजीविका-रूपी चक्रव्यूह को भेदा, वहीं इस चक्रव्यूह से उनके परिवारजनों ने ही उन्हें सुरक्षित निकाला।

पारिवारिक सहयोग के साथ-साथ कठिनाइयों एवं असफलताओं ने भी इन श्रमिकों को सामान्य व्यक्ति से विजेता बनाया। बचपन में किया संघर्ष नोजाराम को प्रवास के अनजाने वातावरण एवं अकेलेपन से जूझने में काम आया। मात्र 10 वर्ष की आयु में किया पलायन एवं कार्य के प्रति उसकी ईमानदारी सोहनलाल के लिए सफलता की

एक सीढ़ी बन गई जिसने उसे विदेश तक पहुंचा दिया। वित्तीय तंगी के दिनों में अपनी पत्नी के साथ मिलकर मांगीलाल ने घर का गंदा पानी स्वयं उठाकर घरेलू बचत का सिलसिला शुरू किया। व्यक्तिगत हानियों ने राधूलाल के हौसलों को और बुलंद किया तो सामाजिक ईर्ष्या एवं कोप का भागी होने पर भी भैरुसिंह व्यवसाय में आगे बढ़ता रहा। हर हताशा को इन्होंने चुनौती के रूप में देखा, एवं वे उपलब्ध वित्तीय, भौतिक एवं सामाजिक संसाधनों का सदुपयोग करते हुए उन्नति की राह में अग्रसर रहे।

इस पुस्तक में वर्णित, सीप रूपी सभी सोलह जीवितियों में समाए हैं सफलता के वे सूचक जिनका ज्ञान एवं आचरण किसी भी प्रवासी श्रमिक के लिए रत्न संग्रह से कम नहीं। साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि सफलता ईश्वरीय देन मात्र नहीं, बल्कि ईमानदारी, कर्मठता, जुझारूपन, पारिवारिक सहयोग व विश्वास से मंजिल को पाया जा सकता है। ये ही वे खंभे हैं जो किसी सफल प्रवासी श्रमिक को सामान्य श्रमिक से अलग व ऊपर रखते हैं। इन सभी सोलह विजेताओं को हमारा सलाम !
